भगवान् शिव की दृष्टि में धर्म

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक के प्रवचनों से संकलित)

“ जो सृष्टि को बिना विचारे आस्था व विश्वास वा परम्परा के नाम पर ईश्वर की पूजा करते हैं, वे मानव जाति को अंधविश्वास के गहन अंधकार में धकेलते हैं और जो बिना विचारे अहंकारवश ईश्वर की सत्ता को नकारते हैं, वे मानव को स्वच्छन्द भोगवादी बनाकर पशु से भी अधम बनाते हैं

इधर हमारा वैदिक विज्ञान दोनों को ही सत्य मार्ग पर लाकर मानव को वास्तव में मानव बनाता है। वैदिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान का विरोधी नहीं बल्कि आधुनिक विज्ञान की वास्तविक एवं अनसुलझी समस्याओं का समाधान करने में सहायक है।

– आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

ओ३म्

भगवान् शिव की दृष्टि में धर्म

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक के प्रवचनों से संकलित)

संकलनकर्त्ता

यशपाल आर्य

सम्पादक

श्रीमती मधुलिका आर्या एवं श्री विशाल आर्य

(उपाचार्या एवं उपाचार्य)

वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान

द वेद साइंस पब्लिकेशन

भीनमाल (राज.)

प्रथम संस्करण, 2022

फाल्गुन कृ. १४, विक्रम संवत् २०७८, महाशिवरात्रि
दिनांक – 01.03.2022

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन सुरक्षित

संख्या – 2000

डिजाइनिंग आदि : विशाल आर्य

मूल्य : **₹250/-**

प्रकाशक : **द वेद साइंस पब्लिकेशन**
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम, भीनमाल
जिला – जालोर (राजस्थान) – 343029

वेबसाइट : www.thevedscience.com, www.vaidicphysics.org
ईमेल : thevedscience@gmail.com
सम्पर्क सूत्र : 9530363300, +91 9829148400

अनुक्रमणिका

1.	भूमिका	**7**
2.	भगवान् शिव के अनुसार धर्म का पहला लक्षण	10
3.	महादेव शिव के उपदेशों के लिए आप क्या कर रहे हैं?	16
4.	नकारात्मक तरंगें ब्रह्माण्ड को कैसे प्रभावित करती हैं?	21
5.	झूठ का व्यापार एवं घटता सत्य	25
6.	सत्य ही जीवन का सुन्दर संगीत	30
7.	माँसाहारियों को मेरी चुनौती	36
8.	दया से ब्रह्माण्ड में संतुलन कैसे होता है?	42
9.	मन की चंचलता का कारण	51
10.	बुराइयों से कैसे बचें	56
11.	इन्द्रियों पर शासन कैसे करें?	62
12.	'मैं आत्मा नहीं हूँ' मानने का परिणाम	68
13.	धरती पर चलना नहीं आता और गैलेक्सियों में...	74
14.	ब्रह्मचर्य	81
15.	ब्रह्मचर्य के साधन	91
16.	दान क्यों करें?	98
17.	सर्वश्रेष्ठ दान कौन सा है?	104
18.	परिशिष्ट	113
	1. गृहस्थ धर्म का स्वरूप	

2. ब्राह्मण का धर्म
3. क्षत्रिय का धर्म
4. वैश्य का धर्म
5. शूद्र का धर्म
6. वर्ण परिवर्तन
7. स्वर्ग (मोक्ष) का अधिकारी कौन?

19. विनम्र निवेदन 129

20. विशेष निवेदन 130

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। (मनुस्मृति 2.13)

सम्पादकीय

आज भारत में जिस महापुरुष की सर्वाधिक पूजा की जाती है, वे हैं- भगवान् महादेव शिव। एक ओर जहाँ पौराणिक विद्वानों ने महादेव शिव के चरित्र को अत्यन्त अश्लील, चमत्कारी और काल्पनिक रूप में प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर आर्यसमाजियों ने उनके चरित्र को हेय समझकर उपेक्षित कर दिया है। वस्तुतः दोनों ही उनके यथार्थ स्वरूप को समाज के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर पाए हैं। सम्भवतः वे उन्हें, उनके चरित्र को, उनके आदर्शों एवं सिद्धान्तों को जानते ही नहीं हैं। ऐसी स्थिति में पूज्य आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक ने भगवान् महादेव के वास्तविक स्वरूप का बोध कराने के लिए महाभारत ग्रन्थ के आधार पर उनके धर्मविषयक उपदेशों को संसार के सामने प्रस्तुत किया। इस विषय पर आचार्यश्री के प्रवचनों का प्रसारण हमारे यूट्यूब चैनल 'वैदिक फिजिक्स' पर सोलह वीडियो के माध्यम से किया गया। ये प्रवचन महाभारत के अनुशासन पर्व के अन्तर्गत दानधर्म पर्व के एक श्लोक पर आधारित हैं। इनमें अहिंसा, सत्य, दया, शम और दान की प्रमाणपूर्वक व दृष्टान्तसहित व्याख्या की गई है।

ये प्रवचन प्रत्येक मनुष्य को सुनने व ग्रहण करने चाहिए और सुनकर व्यवहार में भी लाने चाहिए, विशेषकर गृहस्थियों को। महाभारत में आया है-

'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।'

अर्थात् धर्म का सर्वस्व क्या है? सुनो और सुनकर उस पर चलो।

धर्म की अनिवार्यता को बतलाते हुए, महर्षि वेदव्यास महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में कहते हैं-

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सः किमर्थं न सेव्यते॥

अर्थात् मैं दोनों भुजाएँ ऊपर उठा कर, पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ, किन्तु मेरी

बात कोई नहीं सुनता। धर्म से मोक्ष तो मिलता ही है, अर्थ और काम भी धर्म से ही से सिद्ध होते हैं, फिर भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते? आचार्य चाणक्य धर्म को सुख का मूल बताते हैं- **'सुखस्य मूलं धर्मः।'** इसलिए प्रत्येक सुखाभिलाषी व्यक्ति को धर्म का आचरण अवश्य ही करना चाहिए।

इस पुस्तक में सर्वप्रथम धर्म के पहले लक्षण 'अहिंसा' पर विचार किया गया है। हिंसा, काम, क्रोध, लोभ आदि की तरंगें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को कैसे प्रभावित करती हैं? यह विज्ञान पाठकों के लिए नवीन होगा। इसके पश्चात् 'सत्य' की चर्चा की गई है, जिस पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड टिका हुआ है। दया से ब्रह्माण्ड में संतुलन कैसे होता है? आगे इस विषय में विस्तार से बताया गया है। अगले कुछ अध्यायों में मनुष्य का मन व इन्द्रियाँ कैसे प्रदूषित हो रही है और इन्हें नियन्त्रित करके कैसे ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए, बताया गया है। अन्त के दो अध्याय में दान क्यों करें? और सर्वश्रेष्ठ दान क्या है? जैसे प्रश्नों के उत्तर पाठकों को पढ़ने को मिलेंगे। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के रूप में भगवान् शिव के अनुसार चारों वर्णों के धर्म, वर्ण परिवर्तन और स्वर्ग का अधिकारी कौन? ये विषय वर्णित हैं।

पाठकों की सुविधा और कुछ सज्जनों के आग्रह पर हमने इन प्रवचनों को लिपिबद्ध करने का निर्णय लिया। आचार्यश्री के उपदेशों को लिखित रूप देने का श्रेय प्रिय यशपाल आर्य को जाता है। मौखिक और लिखित भाषा में अन्तर होने के कारण इनकी भाषा को परिष्कृत करना अत्यावश्यक था। इस कार्य को मेरी सहधर्मिणी श्रीमती मधुलिका आर्या, जो श्रीमद् दयानन्द कन्या गुरुकुल, चोटीपुरा की सुयोग्य स्नातिका हैं तथा सम्प्रति जिनकी पीएच.डी. पूर्णता की ओर है, ने कुशलतापूर्वक सम्पादित किया, इसके लिए उनका हृदय से धन्यवाद।

पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ें, साथ ही वे इन विषयों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करें और इन उपदेशों को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें, जिससे उनका जीवन सुखमय और आदर्श बन सके।

-विशाल आर्य

1. भूमिका

भगवान् महादेव शिव एक ऐतिहासिक महापुरुष थे, जो देव वर्ग में उत्पन्न हुए थे। कैलाश क्षेत्र इनकी राजधानी थी। श्रावणमास के आरम्भ से ही देश व विदेश के शिवालयों में पूजा, कीर्तन, कथाएँ, शिवलिंग की अश्लील पूजा, जो शिवपुराण में वर्णित दारुवन कथा पर आधारित है तथा इस कथा को कोई सभ्य व सुसंस्कृत महिला वा पुरुष सुन भी नहीं सकते हैं, प्रारम्भ हो जाती है। शिवलिंग पर दूध चढ़ाना, जो बहकर नालियों में जाकर पर्यावरण को प्रदूषित करता है, क्या यही सच्ची पूजा का स्वरूप है? आश्चर्य है कि भगवान् शिव के इस अभागे राष्ट्र में जहाँ करोड़ों बच्चे वा बूढ़े भरपेट रोटी के लिए तड़पते हों, उस देश में इस प्रकार से दूध बहाना, क्या उन भूखे नर-नारियों के साथ स्वयं भगवान् शिव का भी अपमान नहीं है? कितने शिवभक्त भगवान् शिव के विमल व दिव्य चरित्र, शौर्य, ईश्वरभक्ति, योगसाधना एवं अद्भुत ज्ञान-विज्ञान से परिचित हैं, यह आप स्वयं आत्मनिरीक्षण करें। भगवान् शिव कैसे थे, उनकी क्या प्रतिभा थी, उनके क्या उपदेश थे, यह जानने-समझने का न तो किसी के पास अवकाश है और न समझ। इस कारण हम एक शृंखला के रूप में उनके गम्भीर उपदेशों व ज्ञान-विज्ञान को महाभारत ग्रन्थ के आधार पर प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर रहे हैं। यह वर्णन भीष्म पितामह के उन उपदेशों में मिलता है, जो उन्होंने शर-शय्या पर धर्मराज युधिष्ठिर को दिए थे। आज यह बड़ी विडम्बना है कि पौराणिक (कथित सनातनी) भाइयों ने भगवत्पाद महादेव शिव को अत्यन्त अश्लील, चमत्कारी व काल्पनिक रूप में चित्रित किया है, जबकि आर्यसमाजी बन्धुओं ने मानो उन्हें कचरे पात्र में फेंक दिया है। ऐसे में उनका यथार्थ चित्रण संसार के सम्मुख नितान्त ओझल हो गया है।

पौराणिक बन्धु धर्म के नाम से प्रचलित विभिन्न मान्यताओं व कथाओं को बुद्धि के नेत्र बन्द करके अक्षरशः सत्य मान लेते हैं और कोई मिथ्या बातों का खण्डन करे, तो उसे हिन्दूविरोधी कहकर झगड़ने को उद्यत रहते हैं। वे यह भी नहीं सोचते कि मिथ्या कथाओं व अन्धविश्वासों के कारण ही इस भारत और हिन्दू जाति की यह दुर्गति हुई है, भारत का इतिहास और ज्ञान-विज्ञान नष्ट हुआ है, भारत सैकड़ों

वर्षों तक विदेशियों का दास रहा है। उधर आर्यसमाजी बन्धु गम्भीर चिन्तन व स्वाध्याय के बिना पुराणों के साथ-साथ महाभारत, वाल्मीकि रामायण की भी सभी अथवा अधिकांश बातों को गप्पें मानकर खण्डन करने में तत्पर रहते हैं, भले ही उन्हें महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र जैसे भगवन्तों को ही भूलने का पाप क्यों न करना पड़े, वे खण्डन करने को ही आर्यत्व समझ लेते हैं। वे नहीं सोचते कि यदि मिथ्या कथाओं का खण्डन करना है, तो इन देवों के सत्य इतिहास तो जानना व जनाया जाना अनिवार्य है। आपसे आग्रह है कि आप इन उपदेशों को गम्भीरतापूर्वक सुने, विचारें तथा आचरण में लाकर वास्तविक शिवभक्त बनने का प्रयास करें। ईश्वर हम सबको ऐसा सच्चा शिवभक्त बनने की बुद्धि व शक्ति प्रदान करें, यही कामना है।

भगवान् शिव के विषय में प्राय: शिवपुराण की कथा का वाचन होता है, जबकि महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत को पढ़ने वाले अब रहे ही नहीं। उल्लेखनीय है कि महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित समझे जाने वाले अठारह पुराण वास्तव में उनके द्वारा नहीं, बल्कि अन्य आचार्यों द्वारा रचे गए थे और ये ग्रन्थ प्रामाणिक ग्रन्थों की कोटि में नहीं हैं। यद्यपि महाभारत में भी लगभग 95 प्रतिशत भाग ऐसा है, जो महर्षि वेदव्यास के पश्चात् उनके शिष्यों एवं कालान्तर के अनेक अप्रामाणिक विद्वानों ने लिखकर जोड़ दिया है। पुनरपि 'महाभारत' अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। महर्षि दयानन्द कृत 'सत्यार्थप्रकाश' एवं 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के गम्भीर अध्ययन से प्राप्त प्रखर व नीर-क्षीर विवेकी प्रज्ञा के द्वारा हम किसी भी आर्षग्रन्थ को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। मेरा '**वेदविज्ञान-आलोक**' ग्रन्थ भी इस प्रकार के अन्वेषण में परोक्ष सहयोग कर सकता है।

अब हम महादेव भगवान् शिव की चर्चा करते हैं-

महर्षि दयानन्द ने अपने पूना प्रवचन में महादेव शिव को अग्निष्वात का पुत्र कहा है। अग्निष्वात किसके पुत्र थे, यह बहुत स्पष्ट नहीं है, परन्तु वे महर्षि ब्रह्मा के वंशज अवश्य थे। महाभारत में महर्षि वैशम्पायन ने कहा है-

उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः॥

उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥

शान्तिपर्व। मोक्षधर्मपर्व। अध्याय 349। श्लोक 67 (गीता प्रेस)

यहाँ भगवती उमा के पति भूतपति, जो महादेव भगवान् शिव का ही नाम है, को महर्षि ब्रह्मा का पुत्र कहा है। इनका पाशुपत अस्त्र विश्वप्रसिद्ध था। इस अस्त्र को नष्ट करने वाला कोई अस्त्र भूमण्डल पर नहीं था।

महाभारत के अनुशीलन से भगवान् शिव अत्यन्त विरक्त पुरुष, सदैव योगसाधना में लीन, विवाहित होकर भी पूर्ण जितेन्द्रिय, आकाशगमन आदि अनेकों महत्त्वपूर्ण सिद्धियों से सम्पन्न, वेद-वेदांगों के महान् वैज्ञानिक, सुगठित, तेजस्वी व अत्यन्त बलिष्ठ शरीर वाले व वीरता के अप्रतिम धनी दिव्य पुरुष थे। वे जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त महाविभूति थे। उनके इतिहास का वर्णन तो अधिक नहीं मिलता, परन्तु उनके उपदेशों को हम महाभारत में पढ़ सकते हैं। इस कारण हम इस ग्रन्थ पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

2. भगवान् शिव के अनुसार धर्म का पहला लक्षण

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

(अथर्ववेद 10.8.1)

अब हम महाभारत के आधार भगवान् शिव के उपदेशों का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में दानधर्म पर्व के अन्तर्गत भगवती उमा महादेव शिव से प्रश्न करती हैं कि–

धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः कथं वा चरितुं नरैः।
शक्यो धर्ममविन्दद्भिर्धर्मज्ञ वद मे प्रभो॥ 23॥

अर्थात् प्रभो! धर्मज्ञ! धर्म का क्या लक्षण है? तथा जो धर्म को नहीं जानते हैं, वे धर्म का आचरण कैसे कर सकते हैं?

आज धर्म की परिभाषा बाहरी लक्षणों को देखकर की जाती है। कोई दाढ़ी को देखता है, तो कोई चोटी देखता है, कोई यज्ञोपवीत देखता है, तो कोई संध्या करते हुए देखता है, कोई यज्ञ करते हुए, तो कोई नमाज पढ़ते हुए और कोई प्रार्थना करते हुए देखता है। इनमें से कोई भी धर्म का लक्षण नहीं है। संध्या करना भी धर्म का लक्षण नहीं है। संध्या करने से हमारे अन्दर जो गुण पैदा होंगे, वे धर्म के लक्षण होंगे। संध्या करते रहें और हमारे अन्दर धर्म के लक्षण न आवें, तो संध्या धर्म नहीं है। संध्या धर्मपथ पर चलने के लिए एक साधन है।

अब महादेव शिव धर्म के लक्षण बताते हुए कहते हैं–

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥ 25॥

(महाभारत अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अध्याय 141)

श्रीमहेश्वर ने कहा- देवी! किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना गृहस्थ-आश्रम का उत्तम धर्म है॥

यहाँ अहिंसा को पहला धर्म बताया है और अगर पातञ्जल योगदर्शन को देखें, तो अष्टांग योग में पहला यम है- अहिंसा। भगवान् पतञ्जलि ने यह भी लिखा कि अहिंसा मूल है, अहिंसा महाव्रत है, अहिंसा से बड़ा कोई व्रत नहीं।

अब अहिंसा क्या है, इस पर विचार करते हैं-

प्राय: लोग यह समझते हैं कि अहिंसा का अर्थ है कि किसी से वैर न करना। हमने गांधी के तीन बन्दर सुने हैं- किसी की बुराई मत देखो, किसी की बुराई मत सुनो और किसी को बुरा मत बोलो। बुरा क्या है, यह भी तो पता होना चाहिए। अगर राजा किसी की बुराई नहीं सुनेगा, तो अपराधी को दण्ड कैसे देगा? कोई व्यक्ति याचक बनकर न्याय की याचना करने आता है, तो वहाँ राजा आँख, मुँह और कान बन्द करके बैठ जाए, तो क्या होगा? अर्थात् अहिंसा का अर्थ समझा ही नहीं गया। अहिंसा का अर्थ प्राचीन ऋषियों के काल के बाद सबसे ज्यादा किसी ने समझा, तो ऋषि दयानन्द ने समझा। ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में अहिंसा का अर्थ करते हुए लिखा-

'प्राणिमात्र के प्रति वैर त्याग अर्थात् सबसे प्रीति करना'।

यहाँ 'अर्थात् सबसे प्रीति करना' नहीं लिखते, तो अहिंसा समझ में ही नहीं आती। परमाणु बम किसी की हिंसा नहीं करता, कोई उसे चलाएगा, तब वह हिंसा करेगा। बन्दूक की गोली भी स्वयं किसी की हिंसा नहीं करती, परन्तु क्या यह अहिंसा हो गई? कबूतर किसी की हिंसा नहीं करता, कोई मारने आए, तो आँख बन्द कर लेता है, क्या यह अहिंसा हो गई? पत्थर भी हिंसा नहीं करता, यदि कोई उसे सिर में मार दे, तो वह मारने वाले की हिंसा हुई। क्या इससे पत्थर अहिंसक हो गया? इसलिए ऋषि ने जोड़ा - 'सबसे प्रीति करना'। उधर महर्षि व्यास ने योगदर्शन के भाष्य में अहिंसा की परिभाषा करते हुए लिखा -

'सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः सा अहिंसा'

–योगदर्शन

(सर्वथा) सब प्रकार से (सर्वदा) सभी कालों में (सर्वभूतानां) सभी जीवों के प्रति (अनभिद्रोहः) द्रोह नहीं होना चाहिए, (सा अहिंसा) वह अहिंसा है।

जब न्यायाधीश किसी को दण्ड देता है, तो उसके मन में द्रोह की भावना नहीं होती, अपितु न्याय की भावना होती है। यह भावना होती है कि जो पीड़ित है, उसको न्याय मिलेगा तथा अपराधी का सुधार भी होगा। अगर न्यायाधीश अहिंसा का अर्थ यही ग्रहण करे कि किसी से वैर न करना अर्थात् अपराधी को दण्ड न देना, तो अपराध बढ़ेंगे। इसके लिए न्यायाधीश ही उत्तरदायी होगा। इसलिए अहिंसा का अर्थ हुआ– किसी से द्रोह न करना। न्यायार्थ किसी को मारना हिंसा नहीं, अपितु अहिंसा है। इससे अनेकों के प्राण बचेंगे, इसलिए डाकू को दण्ड देना अहिंसा के अंतर्गत आता है, हिंसा के अन्तर्गत नहीं।

अब दूसरी बात है– सबसे प्रीति करना। दुष्ट को दण्ड देना, वैसे कठिन कार्य है। दुष्ट अगर कमजोर है, तो कोई भी दण्ड दे देगा, लेकिन बलवान् है, तो दण्ड देने का साहस कौन करेगा? ऋषि दयानन्द ने मनुष्य की परिभाषा बताते हुए कहा कि **'अन्यायकारी बलवान् से कभी न डरे'।** मनुष्य का लक्षण पहले बता दिया– मनुष्य अहिंसा से बनता है और जो मनुष्य बन जाता है, वही योगी बनता है। मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी प्राणी, योगी नहीं बन सकता। इसलिए मनुष्यता की पहली परिभाषा भी अहिंसा ही है। **धर्म की पहली परिभाषा अहिंसा है और जो धर्म को धारण करता है, वही मनुष्य है।** 'अन्यायकारी बलवान् से कभी न डरे' यह कोई सरल कार्य नहीं है। अगर राजा अन्याय करने वाला है, तो उससे भी न डरे। इसके विपरीत न्याय करने वाला, धर्माचरण करने वाला, आध्यात्मिक व्यक्ति बहुत कमजोर हो, उसके पास कुछ भी न हो, फिर भी उससे डरता रहे। लेकिन ऐसा व्यवहार में नहीं होता। आज सत्य बोलने वाले व सत्य पर चलने वाले आध्यात्मिक व्यक्तियों को कोई कुछ समझता ही नहीं, जो सत्तासम्पन्न एवं बलसम्पन्न हैं, उनकी चाटुकारी सब करते हैं, ऐसा करना हिंसा है। अगर दुष्ट लोगों की चापलूसी करेंगे, तो वह

दुष्ट और भी ज्यादा दुष्टता करेगा। इस तरह उसका दोष भी हम पर ही आएगा। इसलिए ऋषि ने लिखा था कि **'अन्यायकारी बलवान् से कभी न डरे, सदा उसके नाश का प्रयत्न करता रहे'**, उसका नाश करना भी अहिंसा की कोटि में आता है। एक राजा अगर दुष्ट है, तो उसको दण्ड देने पर सम्पूर्ण राज्य सुखी हो जायेगा, इसलिए उसे दण्ड देना अहिंसा की कोटि में आता है। भगवान् कृष्ण, भगवान् राम, भगवान् महादेव आदि ने यही तो किया था, सबके हाथ में हथियार हैं, यह हिंसा के लिए नहीं, अपितु अहिंसा की रक्षा के लिए है। उनका हथियार चलाना भी अहिंसा की कोटि में आता है। जैसे- न्यायाधीश का न्यायपूर्वक फाँसी की सजा सुनाना भी अहिंसा की कोटि में आता है। यदि अन्यायपूर्वक दण्ड देगा, तो हिंसा की कोटि में आ जाएगा।

अगली बात, **'धर्मात्मा निर्बल से सदैव डरता रहे, उसका सदा प्रियाचरण करे'** अर्थात् उससे प्रीति रखे। महर्षि दयानन्द ने यह भी बता दिया कि किससे प्रीति और किससे शत्रुता करे- **'अन्यायी से शत्रुता और सज्जन से प्रीति करे'**। सबसे प्रीति करना, यह कहने में बहुत सरल है, लेकिन एक अपना भाई हो और एक कोई शत्रु का भाई हो। शत्रु भले ही दुष्ट है, लेकिन उसका भाई सज्जन है, तो उससे कितने लोग प्रीति करेंगे? **अपने और पराये का भेद मिटाकर व्यवहार करना, यह है वास्तव में प्रीति करना और यही अहिंसा है।** सबसे प्रीति करना अर्थात् सबके सुख के बारे में सोचना। मन्दिरों में नारे लगते हैं- धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, सभी सुखी हों, प्राणियों में सद्भावना हो, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। इन सबको ऐसे बोला जाता है, जैसे टेप रिकॉर्डर बोलता है। टेप रिकॉर्डर में कोई भाव नहीं होता, केवल शब्द होते हैं और जब हम बोलते हैं, तो भाव भी होते हैं। इसी प्रकार जो नारे बोले जाते हैं, उनमें भी कोई भाव नहीं होता। यदि उनसे पूछा जाए कि सभी प्राणियों में सद्भावना एवं उनके कल्याण के लिए आप क्या कर रहे हैं? जैसे कोई डॉक्टर नारा लगाए कि सभी रोगी ठीक हों, सभी रोगी निरोग हों, सभी रोगी स्वस्थ हों और दवाई किसी को न दे, तो क्या उसके नारे से सभी रोगी ठीक हो जायेंगे? कदापि नहीं। वैसे ही हम नारे लगा रहे हैं- धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, सभी सुखी हों, प्राणियों में सद्भावना हो। जब तक हम अहिंसक

नहीं बनेंगे और हमारे मन में सबके प्रति प्रीति की भावना पैदा नहीं होगी, तब तक इन नारों से भी कोई लाभ नहीं होगा।

क्या दिन के 24 घंटे में ऐसा कोई समय है, जहाँ हम सबकी भलाई के लिए सोचते हों? हर समय मेरी दुकान, मेरा मकान, मेरा व्यापार, मेरी सर्विस, मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरी पत्नी, मेरे माता-पिता, ऐसा बोलते रहते हैं। मात्र अपनों के विषय में सोचते हैं, सोचना भी चाहिए, अच्छी बात है। अपनों के बारे में नहीं सोचेंगे, तो दूसरों की भलाई कैसे करेंगे? लेकिन ये सब करते हुए क्या कोई ऐसा भी समय आता है कि हम देश के बारे में सोचें, मानवता के बारे में सोचें, धर्म के बारे में सोचें? मन्दिर में जाकर घंटे बजा लेंगे और तीन-चार नारे लगाकर वापस आ जायेंगे। जब हम नारे लगा रहे हों और उसी समय कोई दु:खी व्यक्ति आ जाए, तो क्या हम उसकी बात सुनने के लिए तैयार होंगे? हम उसको कहेंगे कि हमें पूजा करने दो। अगर हम ध्यान में बैठे हैं और किसी दु:खी की आवाज आ जाए, तो हमारा क्या कर्त्तव्य है? हम ध्यान में बैठे रहें या जाकर उसकी सहायता करें? उत्तर है कि जाकर उसकी सहायता करें। परमात्मा को ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं है। हम चार घंटे ध्यान करते रहें, तो इससे उसको क्या मिलेगा? हम ध्यान अपने स्वार्थ के लिए करते हैं, ताकि हमारी आत्मा एवं बुद्धि पवित्र हो, जिससे हम अच्छे काम करें और हमें अच्छा फल मिले। इसलिए ध्यान अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अगर ये पवित्र नहीं हुए, तो सारा जीवन अव्यवस्थित हो जायेगा। इस प्रकार अहिंसा का अर्थ है- किसी से वैर न करना, किसी को अन्याय व द्वेष की दृष्टि से नहीं देखना। बल्कि प्रेम और स्नेह की दृष्टि से देखना। इसलिए यजुर्वेद में कहा-

'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥' (यजु. 36.18)

अर्थात् हम सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें।

संसार में लाखों-करोड़ों प्रकार के प्राणी हैं। उनमें से हम मनुष्य भी एक प्रकार की प्रजाति हैं। अहिंसा कहती है- सभी प्राणियों के प्रति प्रीतिभाव। हम तो मानव से भी प्रीति नहीं कर पाए, तो दूसरे प्राणियों से कहाँ कर पायेंगे। स्वयं को छोड़कर,

बाकी सबको तो हमने अपना भोजन बना लिया। जिसको भी खाया जा सकता है, उसको मनुष्य खाने का प्रयास कर रहा है। जहाँ अहिंसा कहती है कि सबसे प्रीति करो, वहाँ हमने सब प्राणियों को खाना ही अपना धर्म बना लिया। हम ऐसा बोलते हैं- कि हम क्या खायेंगे, यह हम तय करेंगे, दूसरा कौन तय कर सकता है ? यह तो हमारी स्वतन्त्रता है। इसके लिए अधिकारों की आवाजें उठती हैं कि हमें खाने का अधिकार है। मैं गाय खाऊँ या कुछ और, यह मेरा अधिकार है, गोहत्या बन्द करने से क्या होगा ? इसी कारण गोहत्या आज तक बन्द नहीं हो पाई। अब रह गए हम मनुष्य, उनमें से भी एक दूसरे को खाने की बात कर रहे हैं। विश्व में 7-8 अरब मनुष्य हैं, उनमें से हम कितनों का भला चाहते हैं ? महादेव शिव की परिभाषा तो यह थी कि कोई भी हमारे कारण दु:खी न हो, पर दुष्ट को दण्ड देने का व आत्मरक्षा का अधिकार सबको है। जैसे हिंसा कई प्रकार की होती है, वैसे ही अहिंसा भी कई प्रकार की होती है। इनकी बात हम आगे करेंगे।

3. महादेव शिव के उपदेशों के लिए आप क्या कर रहे हैं?

पूर्व में हम भगवान् शिव द्वारा उपदिष्ट धर्म के पहले लक्षण अहिंसा पर विचार कर रहे थे। दूसरा है- सत्य वचन, तीसरा है- सब प्राणियों पर दया, चौथा है- मन-इन्द्रियों को वश में रखना और पाँचवा है- दान।

अब हम अहिंसा की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हिंसा को भी जानने का प्रयास करते हैं। भगवान् पतञ्जलि ने योगदर्शन में और महर्षि व्यासकृत भाष्य में हिंसा तीन प्रकार की बताई गई है - कृता, कारिता, अनुमोदिता।

कृता अर्थात् जो अपने द्वारा की जाए। जैसे- माँसाहारी व्यक्ति, जो स्वयं मार कर खाता है। कारिता अर्थात् जो किसी अन्य से कराई जाए। अनुमोदिता अर्थात् न किया और न कराया, लेकिन अनुमोदन किया अर्थात् किसी की हिंसा करने पर ऐसा कहना कि ठीक किया, अच्छा किया, ऐसा ही होना चाहिए। **ये तीनों ही पापी हैं- करने वाले, कराने वाले और हिंसा का अनुमोदन करने वाले।**

इसी प्रकार अहिंसा भी तीन प्रकार की हो जायेगी- एक जो हम स्वयं आचरण में ला रहे हैं, दूसरा किसी को सिखा रहे हैं और तीसरा यदि कोई धार्मिक व्यक्ति या महात्मा है, तो उसका अनुमोदन कर रहे हैं।

अन्य तीन प्रकार की हिंसा- मनसा, वाचा और कर्मणा।

मनसा हिंसा- बहुत सी गलत बातें हमारे मन में होती हैं, लेकिन समाज व शासन के भय के कारण कर नहीं पाते। जैसे- इसको मार दूँ, उसको मार दूँ, उसका धन ले लूँ, पर हो नहीं पाता। लेकिन मन से की हिंसा भी पाप है। **वाचा हिंसा**- वाणी से किसी को दुःख देना। कई लोग कटु बोलते हैं, लेकिन कुछ कर नहीं पाते। ऐसी हिंसा, वाणी से की गई हिंसा है। **कर्मणा हिंसा**- अपने कर्मों से किसी को कष्ट पहुँचाना। इस प्रकार कृता, कारिता एवं अनुमोदिता हिंसा के आगे तीन-2 भेद और होने से कुल नौ प्रकार की हिंसा हुई।

महर्षि व्यास ने इसमें भी हिंसा के तीन और भेद बताए हैं- मृदु, मध्यम और तीव्र।

जैसे किसी को गाली देना हिंसा है, उसकी पिटाई करना, उससे भी बड़ी हिंसा है, लेकिन उसको जान से मार देना, सबसे बड़ी हिंसा है। आज हमारे देश में सबसे ज्यादा मन्दिर महादेव शिव के मिलते हैं और श्रावणमास को महादेव शिव का महीना मानते हैं। बहुत सारे माँसाहारी श्रावणमास में माँस नहीं खायेंगे, बाल नहीं कटाएँगे, प्रतिदिन मन्दिर में जाकर दूध व जल चढ़ाएँगे। परन्तु महर्षि व्यास ने कहा है कि अहिंसा किसी देश वा काल के अनुसार नहीं होती कि मन्दिर में हिंसा नहीं करेंगे, घर पर कर लेंगे। धर्म सब जगह होगा और अधर्म भी सब जगह माना जायेगा। ऐसे ही श्रावणमास में हिंसा नहीं करेंगे, बाद में करेंगे। कहीं भी व कभी भी करें, यह अपराध है। किसी एकादशी, पूर्णिमा वा अमावस्या को पाप नहीं करेंगे, यह भी अज्ञान है। धर्म सार्वभौम होता है, अहिंसा भी सार्वभौम होती है। सब प्राणियों के प्रति प्रीति, वैर का त्याग सदैव रहना चाहिए। कोई सोमवार को हिंसा नहीं करता, क्योंकि महादेव का दिन मानता है, तो कोई मंगलवार को नहीं करता क्योंकि हनुमान् का दिन मानता है। महादेव का तो प्रत्येक दिन है, क्योंकि महादेव नाम परमात्मा का है। अगर महापुरुष वाले महादेव का मानें, तो वे अब हैं नहीं और होंगे तो मोक्ष में होंगे। अगर उनको भी याद करना है, तो प्रतिदिन करें, कभी-कभी क्यों? सोमवार को ही क्यों? जिस देश में सबसे ज्यादा भगवान् शिव के मन्दिर हों, उस देश में 70 प्रतिशत से अधिक माँसाहारी हो गए। इस विषय पर सारे अहिंसक, धर्माचार्य व शिवभक्त मौन हैं। नंदी की पूजा करेंगे, क्योंकि वे सोचते हैं कि भगवान् शिव नंदी[1] बैल पर जाया करते थे। नंदी की मूर्ति हर महादेव के मन्दिर में मिलती है, लोग उसकी पूजा करते हैं। लेकिन अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए नंदी को मारा जा रहा है, उसकी किसी को चिंता नहीं है। हिन्दू मछली को भी अवतार बताता है, तो दूसरी ओर सरकारें मछलियों के निर्यात से अरबों रुपये कमाती है। मछली मार कर बेचने को नीली अर्थव्यवस्था कहेंगे, तो माँस बेचने को गुलाबी। आज अर्थव्यवस्था के भी रंग हो गए हैं। मछलियों के मरने से जो चक्रवात

[1] सम्भवत: नंदी नाम का कोई वाहन रहा होगा।

आयेंगे, उनमें से एक भी चक्रवात भयंकर आ गया, तो अरबों रुपये भी उस क्षति की पूर्ति नहीं कर पाएंगे। जितना विनाश होता है, उतना सरकार देती भी नहीं है और दे भी नहीं सकतीं। आज के वे अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक सारे मूर्ख हैं, जो सोचते हैं कि शराब पिलाकर धन कमा लेंगे, वे ये नहीं सोचेंगे कि शराब पिलाने से जो बीमारियाँ होंगी, अपराध बढ़ेंगे और जो एक्सीडेंट होंगे, उनमें कितना विनाश होगा, इसकी कोई गणना नहीं है। किसी भी प्रकार से जो हिंसा कर रहे हैं, वे भगवान् शिव के द्रोही हैं, चाहे वे तिलक आदि लगाकर बर्फानी बाबा के दर्शन क्यों न करें, अब तो दर्शन ऑनलाइन हो रहे हैं। जो महादेव लिख गए, उसको मानने वाला आज कोई नहीं दिखाई देता। यह ठीक है कि किसी महादेव के मन्दिर में हिंसा नहीं होती, लेकिन देवी के कुछ मन्दिरों में तो होती है।

अब भोजन व अर्थव्यवस्था के नाम पर जो हिंसा हो रही है, इसका कोई प्रतिकार नहीं कर रहा, सबको धन चाहिए। वैज्ञानिकों ने रिसर्च किया कि मछली के बिस्कुट खाने से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। परन्तु यज्ञ, व्यायाम, प्राणायामादि करने से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी, ऐसा कोई नहीं कहता। फल-शाक, दूध आदि के सेवन से प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी, ऐसा कोई नहीं कहता। एलोपैथी में कोई भी दवाई ऐसी नहीं है, जो प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली हो, आयुर्वेद में अवश्य है। सर्वत्र हिंसा का दौर चल रहा है। आज महादेव शिव होते, तो एक पाशुपत अस्त्र चलाते और सबको नष्ट कर देते। लेकिन आज न महादेव हैं और न ही उनका कोई भक्त, जो इस अहिंसा के विरुद्ध बोल सकता हो। नेताओं के हाथ में सत्ता होती है और कोई भी नेता महादेव शिव का भक्त नहीं है। सब हिंसक हो गए, सब पर राक्षसी प्रवृत्ति हावी है। राक्षसी प्रवृत्ति क्यों हावी है, इसके तीन ही कारण हो सकते हैं – या तो सब डरे हुए हैं या भ्रमित हैं या लोभ में पड़े हुए हैं। डराने वाले, बहकाने वाले और लोभ देने वाले देश से बाहर बैठे हैं। किसको क्या लाभ मिला, इसको तो वह स्वयं जानता है तथा ईश्वर जानता है। जिसको आज हम विज्ञान कहते हैं, उसने दुनिया की अनेकों प्रजातियों को तो नष्ट कर दिया और हमारे यहाँ नारे लगते हैं '**अहिंसा परमो धर्मः**'।

अहिंसा अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति वैरत्याग तभी माना जाएगा, जब इस देश से

माँसाहार समाप्त हो जायेगा और तभी यह देश महादेव शिव का देश माना जायेगा। जब दवाओं के नाम पर हिंसा समाप्त हो जायेगी और जिस तकनीक द्वारा प्रजातियाँ मर रही हैं, वैसी तकनीक जब समाप्त हो जायेगी, तब यह देश होगा- ऋषियों का देश, देवों का देश, बुद्ध-महावीर का देश, महर्षि दयानन्द का देश। अहिंसा के बिना धर्म, धर्म नहीं रहता, सम्प्रदाय या मत-पन्थ हो सकते हैं, लेकिन धर्म नहीं। जो व्यक्ति अहिंसक नहीं है, जिसमें प्राणिमात्र के प्रति संवेदना नहीं है, वह अधर्मी है, पापी है।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्म का खाने-पीने से क्या लेना-देना? तो उनसे पूछना चाहिए कि मनुष्य का माँस खाओगे, तो भी लेना-देना होगा या नहीं होगा? क्या धर्म केवल मनुष्य के लिए है? धर्म सारे भूमण्डल के लिए है, सारे ब्रह्माण्ड के लिए है। धर्म का अर्थ बनता है **'ध्रियते लोकोऽनेन'** अर्थात् जिससे लोकों (सृष्टि) को धारण किया जाता है, वही धर्म है। हम हिंसा करके सोच रहे हैं कि हम स्वस्थ होंगे, धन आएगा, लेकिन हम यह नहीं सोच रहे कि इससे स्वस्थ नहीं होंगे, अपितु बीमारियाँ और अधिक बढ़ेंगी। कल यदि कोई डॉक्टर यह खोज कर ले कि मनुष्य का खून पीने से जवानी आती है, तो क्या मनुष्य का रक्त भी पीयेंगे? सुनते हैं कि कुछ क्रूर लोग ऐसा कर भी रहे हैं। गरीबों के बच्चों को पकड़कर, उनको यातनाएँ देकर, उस दशा में उनका खून निकालकर पीने वाले भी इस धरती पर हैं। कितना प्रामाणिक है, मैं नहीं जानता, किन्तु यदि ऐसे नरभक्षी मनुष्य भी इस धरा पर रहते हैं, तो ये वही राक्षस हैं, जिनका वध करने के लिए भगवान् श्रीराम वन को निकले थे। हम राम मन्दिर के लिए गाँव-गाँव से धन इकट्ठा कर रहे हैं, परन्तु इन नरभक्षियों के खिलाफ कोई बोलने के लिए तैयार नहीं है।

महर्षि दयानन्द ने गो-करुणानिधि में लिखा था- **हे माँसाहारियो! जब धरती से प्राणी समाप्त हो जायेंगे, तो क्या मनुष्यों को भी छोड़ोगे वा नहीं या उनको भी खा जाओगे?** जो धनवान् हैं, सत्तावान् हैं, ऐश्वर्य-सम्पन्न हैं, वे गरीबों को खा जायेंगे, उन्हें कोई रोकने वाला नहीं होगा और हम सबको मनोरंजन के नाम पर मोबाइल में, इंटरनेट में उलझा दिया है, ताकि हम उसमें लगे रहें और वे हिंसक लोग दुनिया पर साम्राज्य करते रहें। यह है महादेव शिव का देश। जो भी महादेव

भक्त मेरी आवाज को सुन रहे हैं, वे सोचें कि महादेव शिव के इन उपदेशों को आत्मसात् करने के लिए आप क्या कर रहे हैं? दूसरों को आप क्या प्रेरणा दे रहे हैं? इन सब विषयों पर धर्मगुरु मौन हैं। वास्तव में धर्मगुरुओं ने समाज को मूर्ख बना रखा है। मैं केवल महादेव शिव की बात करूँगा, उनके अनुसार धर्म का पहला लक्षण है– अहिंसा।

आइए, हम आत्मनिरीक्षण करें कि हम महादेव शिव की कितनी भक्ति करते हैं, हम उनके कितने अनुयायी हैं? महादेव हमारे पूर्वज हैं, हमारे महापुरुष हैं। एक महादेव नाम परमात्मा का भी है, जो सृष्टि की रचना करता है। उन महादेव की बात यहाँ नहीं हो रही, क्योंकि उन्होंने तो वेद में उपदेश दिया है, जिसे हम भूल गए। जो वेदभक्त महादेव शिव महापुरुष हुए, ऐसा माना जाता है कि वे मानसरोवर कैलाश पर रहते थे। मानसरोवर भी अब हमारे हाथ से गया, वहाँ असुरों का शासन आ गया। इसलिए विचार करें कि हमें क्या करना चाहिए? अब आपको अपने आत्मा की आवाज सुननी है तथा यह जानना है कि हमें क्या–क्या करना है? महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि **'मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य अर्थात् अधर्म की ओर झुक जाता है।'**

4. नकारात्मक तरंगें ब्रह्माण्ड को कैसे प्रभावित करती हैं?

महाभारत में चार स्थानों पर आया है- **'अहिंसा परमो धर्मः।'**

महर्षि पतञ्जलि ने भी अहिंसा को मूल कहा है, बाकी सब इस की शाखाएँ हैं, इसलिए इस पर थोड़ा और विचार करते हैं। अहिंसा का विपरीत है- हिंसा। हिंसा क्यों खतरनाक है? क्यों अहिंसारूपी धर्म ही सारे लोकों को शरण दे सकता है? इस पर विचार करते हैं-

अगर हम वैज्ञानिकों से पूछें कि सम्पूर्ण सृष्टि किससे बनी, तो वे कहेंगे मोलिक्यूल्स से, फिर हम पूछेंगे कि मोलिक्यूल्स किससे बने, तो वे कहेंगे एटम से। फिर हम पूछें कि एटम किससे बना, तो वे कहेंगे इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन तथा अन्य कुछ कणों से। फिर हम पूछें कि ये किससे बने, तो वे कहेंगे कि ये क्वार्क से बने हैं, लेकिन इलेक्ट्रोन किससे बना? इसकी किसी को कोई जानकारी नहीं है। फिर हम पूछें कि क्वार्क तथा फोटोन किससे बने, तो इसकी भी उन्हें जानकारी नहीं है, लेकिन कुछ स्ट्रिंग थ्योरी वाले कह देंगे कि ये स्ट्रिंग से बने, लेकिन स्ट्रिंग किससे बनी? इसकी उन्हें कोई जानकारी नहीं है। हम कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ध्वनि तरंगों के कम्पनों से बना है और वे कम्पन ही वैदिक छन्द हैं, वे कम्पन ही प्राण हैं। यह कम्पन मनस्तत्त्व में हो रहा है। अब वे पूछेंगे कि मन किससे बना है, तो इसका उत्तर है- प्रकृति से।

अब यहाँ विचार करते हैं कि जब हम किसी प्राणी को पीड़ा देते हैं, तो वह पीड़ा कौन अनुभव करता है? सबसे पहले मन ही अनुभव करता है लेकिन, यह पीड़ा मन तक ही नहीं रुकती, अपितु आत्मा तक जाती है, इसलिए उपनिषद् में कहा है-

'एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।' (प्रश्नोपनिषत् 4.9)

इसका भाव यह है कि यह जो जीवात्मा है, वही देखने वाला, स्पर्श करने

वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, जानने वाला और कर्म करने वाला है। हमारी वाणी एवं मन के विचारों का प्रभाव, आत्मा तक पहुँचता है। अब जरा विचार करें कि आत्मा ध्वनि तरंगों के कौन से रूप को अनुभव करता है? उत्तर है – आत्मा ध्वनि तरंगों को परा रूप में ग्रहण करता है और परा ध्वनि तरंगों से ही सब बना है, यहाँ तक कि मन भी। जीवों की हिंसा करने से जो पेन वेव बनेंगी, उनको एक भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर मदन मोहन बजाज ने अपनी पुस्तकों में **'आइंस्टीन पैन वेव'** नाम दिया है। अगर उन्होंने यह नाम दिया है और बजाज एक अच्छे वैज्ञानिक रहे, तो इसका यह अर्थ है कि आइंस्टीन मानते थे कि पेन वेव होती हैं। मैंने नहीं पढ़ा, लेकिन प्रोफेसर बजाज ने अपनी पुस्तकों में दिया है और वह पुस्तक मेरे पास है। यदि आइंस्टीन, फाइनमेन आदि कोई पाश्चात्य वैज्ञानिक कहेगा, क्या हम तभी मानेंगे? यह हमारी बौद्धिक दासता होगी। जो हमारे ऋषि कहते हैं, हमें वह मानना चाहिए और उनके समर्थन में कोई वैज्ञानिक कुछ कहता है, तो उसका भी स्वागत या समर्थन करना चाहिए। अज्ञानी बालक भी अगर तर्कसंगत बात कहे, तो उसे स्वीकार करना चाहिए और तर्कविहीन व मिथ्या बात कोई बड़ा वैज्ञानिक कहे, उसे भी नहीं मानना चाहिए।

सम्पूर्ण सृष्टि मनस्तत्त्व से बनी है। जब किसी प्राणी को मारा जायेगा, तो उससे हिंसा की जो तरंगें निकलेंगी, उनसे सम्पूर्ण मनस्तत्त्व में कम्पन होगा। जैसे एक पुल पर 50 व्यक्ति खड़े हों और एक व्यक्ति किसी प्रकार से पुल को हिलाए, तो उस पर खड़े सभी 50 आदमी प्रभावित होंगे, ऐसा नहीं हो सकता कि केवल पुल ही प्रभावित हो। जब किसी की हिंसा की चीत्कार होती है, तो एक वह ध्वनि तरंग अपने आप हानिकारक है, दूसरी उसकी पीड़ा की तरंगें, जो मन से उठ रही हैं, ये दोनों ही संसार को प्रभावित करती हैं। प्रोफेसर बजाज ने आगे कहा है कि दूसरी गैलेक्सियों तक भी ये पेन वेव जाएँगी।

अब इस पर विचार करते हैं कि मनुष्य हिंसा क्यों करता है–

कोई लोभ से हिंसा करता है कि सोचता है कि पशु को मारने से चमड़ा मिलेगा, माँस बेचने से धन मिलेगा। अपना जीवन बचाने के लिए दूसरों को मारना,

यह वर्तमान की आसुरी स्वास्थ्य नीति है। कोई प्रतिशोध लेने के लिए क्रोध में हिंसा करता है। युद्ध लोभ और प्रतिशोध दोनों के लिए होते हैं। तीसरा कारण है- काम। वर्तमान में काम के कारण भी खूब हिंसाएँ हो रही हैं। जो भी हिंसा करेगा, तो उस हिंसा की तरंग के साथ-साथ काम, क्रोध और लोभ की कोई न कोई तरंग अवश्य आयेगी। मान लीजिए, मैं लोभ कर रहा हूँ, तो सोचूँगा कि उसका धन मेरे पास आ जाए, मछलियों तथा पशुओं को मार कर धन कमा लूँ, तो जैसे पेन-वेव ब्रह्माण्ड को प्रभावित करती हैं, वैसे ही लोभ व क्रोधादि की तरंगें भी ब्रह्माण्ड को प्रभावित करेंगी। मन जो सारे ब्रह्माण्ड का आधार है, वह आज पूरी तरह से हिल रहा है। यदि मकान की नींव को हिलाते रहें, तो मकान कब तक स्थिर रहेगा? निरन्तर कमजोर होकर गिर जाएगा। मनुष्य आज राक्षस हो गया है, वह राक्षस राजनेता, नौकरशाह, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री, पूंजीपति किसी भी रूप में हो सकता है। आज लग रहा है कि सबसे बड़े पूंजीपति ही वैज्ञानिक हैं। लेकिन सच्चे विज्ञान को जानने वाले वैज्ञानिक कभी भी हिंसा की बात नहीं कर सकते।

हिंसा की तरंगें ब्रह्माण्ड को कैसे प्रभावित करेंगी? जैसे किसी मकान में थोड़ा सा कम्पन किया जाए, तो उसका हर अणु प्रभावित होगा। वैसे ही हिंसा की तरंगों से सम्पूर्ण मनस्तत्त्व प्रभावित होगा तथा उस मनस्तत्त्व से बने हुए, जितने भी पार्टिकल हैं, वे भी प्रभावित/कम्पित होंगे। वे कम्पित हुए पार्टिकल भी तरंग पैदा करेंगे और वे तरंगें हमारे मन, हमारे स्वास्थ्य, पृथ्वी, समुद्र आदि को प्रभावित करेंगी, जिससे भूकम्प, चक्रवात व तूफान आयेंगे। वे ही तरंगें बादलों को भी प्रभावित करेंगी, जिससे कहीं बाढ़ आएगी, तो कहीं सूखा पड़ेगा। वे ही तरंगें सूर्य को प्रभावित करेंगी, तो उससे हीट-वेव आएँगी।

हिंसा की तरंगें क्रोध, लोभ और मोह से उत्पन्न होती हैं, तो उनको शान्त कैसे किया जाए? क्रोध का विपरीत प्रेम, लोभ का विपरीत त्याग और पीड़ा का विपरीत शान्ति है। क्रोध की तरंगें नकारात्मक प्रभाव डालेंगी और प्रेम की तरंगें सकारात्मक प्रभाव। क्योंकि प्रेम की तरंगों में सत्त्वगुण प्रधान होगा और सत्त्वगुण का परिणाम होता है- सुख, शान्ति और आनन्द। क्रोध की तरंगों में रजोगुण व तमोगुण प्रधान

होगा, जिसका परिणाम होगा अशान्ति, अज्ञानता, मूढ़ता आदि। इस प्रकार क्रोध, लोभ, हिंसा, पीड़ा आदि की तरंगों को दूर करने का एकमात्र उपाय है, प्रेम की तरंगों को संसार में उत्पन्न करना। इसलिए ऋषि दयानन्द ने कहा कि सबसे प्रीति करना। आज हिंसा की तरंगों के साथ पीड़ा, लोभ, क्रोध और काम की तरंगें भी जुड़ गई हैं। ये पाँचों मिलकर इस संसार का नाश कर रही हैं। चाहे भूगर्भीय हलचल का बढ़ना हो या तूफानों का आना, चाहे दुनिया में कहीं बाढ़ का आना हो या साइबेरिया जैसे ठण्डे स्थान पर उच्च तापमान का होना। इन सबका कारण है कि पिछले कुछ वर्षों से हिंसा बहुत बढ़ गई है। आज हिंसा की तरंगों का जो ताण्डव हो रहा है, उसके पीछे क्रोध नहीं, अपितु धन का लोभ प्रमुख कारण है। राक्षस लोग हिंसा व पीड़ा की तरंगों को निरन्तर बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं और महादेव के भक्त मौन हैं। वे मौन ही नहीं हैं, अपितु समर्थन कर रहे हैं। अहिंसा का प्रकरण हम यहाँ समाप्त करते हैं। अगले दिन हम सत्य पर चर्चा करेंगे।

5. झूठ का व्यापार एवं घटता सत्य

अब हम महादेव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के दूसरे लक्षण 'सत्य' पर चर्चा करते हैं-

कोई व्यक्ति सत्य तभी बोलेगा, जब वह सत्य को जानेगा। वेद में लिखा है- **'स्वेन क्रतुना संवदेत'** अर्थात् अपने कर्म से बोलो। इसका यह अर्थ हुआ कि सत्य जानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना। सत्य के लिए ऋग्वेद में कहा है-

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥ (ऋग्वेद 10.85.1)

यह भूमि सत्य पर टिकी हुई है, सूर्य सत्य पर टिका हुआ है। सत्य के विषय में महर्षि व्यास ने योगदर्शन के भाष्य में लिखा **'जैसा आत्मा में हो, वैसा मन में हो, जैसा मन में हो वैसा वाणी में हो और वैसा ही कर्म में भी हो, लेकिन सबके हित में हो'** और भगवान् शिव ने महाभारत में सत्य का लक्षण बताते हुए लिखा है **'जैसा सुना, उसमें बिना कुछ मिलाए, उसको बिना तोड़े-मरोड़े प्रस्तुत करना सत्य है।'** यह सब जानते हैं कि सत्य बोलना सबसे सरल कार्य है, लेकिन बोलता कोई नहीं है। असत्य बोलने में बहुत सोचना पड़ता है कि क्या बोलूँ। कोई अपराध या थोड़ी भी त्रुटि होने पर देखो मन में कितनी तरंगें उठती हैं। किसी के सामने ऐसा बोलना, किसी दूसरे के सामने ऐसा बोलना, सबके सामने अलग-अलग सोचना पड़ेगा, लेकिन सत्य बोलने में कुछ सोचना ही नहीं पड़ेगा, जैसा जानता है, वैसा कह देगा। जो बहुत छोटे बच्चे होते हैं, वे सत्य बोलते हैं। जैसा उनके मन में होता है, वैसा ही बोल देते हैं। एक पागल व्यक्ति भी सत्य बोलता है। उसके मन में जैसा आ जाए, वैसा ही बोलता है और वैसा ही करता भी है। अगर उसके मन में आ जाए कि किसी के सिर में पत्थर मारना है, तो वह मार देगा, सोचेगा ही नहीं। क्या यह सत्य है?

महर्षि व्यास सत्य परिभाषा करते हैं- **'जैसा आत्मा में है वैसा मन में, जैसा मन में है, वैसा वचन में और जैसा वचन में है, वैसा कर्म में, लेकिन उन्होंने**

यह शर्त रख दी कि जो सब भूतों के हित के लिए हो, वही सत्य है और जो भूतों के विनाश के लिए हो, वही असत्य है।' जैसे यदि किसी के मन में आए कि मैं किसी का धन चुरा लूँ, किसी का सिर फोड़ दूँ, किसी को गाली दूँ, किसी को हानि पहुँचा दूँ, वैसा ही उसके वचन में हो और यदि वह वैसा ही कर डाले, तो क्या यह सत्य हो जाएगा? इस दृष्टि से देखा जाए, तो डाकू भी तो सत्य बोलते हैं, क्योंकि कई डाकू ऐसे होते हैं, जो पहले ही पत्र भेज देते हैं कि उस दिनांक को डकैती डालने आऊँगा, तुम्हारे में साहस हो, तो रोक लेना। इसलिए महर्षि व्यास ने बहुत सोच समझ कर लिखा कि जिससे सब प्राणियों का हित हो, वही सत्य है। सब प्राणियों की भलाई होनी चाहिए, ऐसा नहीं कि केवल स्वयं की भलाई हो।

किसी दुकानदार से पूछें कि तुम दिन में कितनी बार असत्य बोलते हो, तो वह कहेगा कि यह भी कोई प्रश्न है, असत्य तो बोलना ही पड़ता है, बिना असत्य बोले व्यापार कैसे चलेगा? राजनेताओं के भाषण राजनैतिक सभा में सुन लो और उनसे पूछो कि आपने जो भाषण दिया, उसमें कितने प्रतिशत असत्य था? तो वे कहेंगे कि यह भी कोई प्रश्न हुआ, असत्य तो बोलना ही पड़ता है, बिना असत्य के राजनीति कैसे होगी? कुछ लोग कहते हैं कि आज तो बिना असत्य के व्यवहार चल ही नहीं सकता। लेकिन आज भी कुछ दुकानदार ऐसे है, जो सबको एक मूल्य पर सामान देंगे, चाहे कोई बालक हो या बूढ़ा और उनका व्यापार भी खूब चलता है।

ऐसा नहीं है कि लोकव्यवहार में सत्य का परिणाम अच्छा नहीं होता। मैंने तो स्वयं सत्य के प्रयोग किए हैं और सत्य को खूब परखा है। जब मैं किशोर ही था, तो अपराधी भी मेरे सामने नहीं आते थे और बड़े-बड़े नेताओं, अधिकारियों से मेरा विवाद होता ही रहता था, लेकिन कोई भी मेरा बुरा नहीं कर पाया। असत्य बोलने वाले लोगों को बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अगर सत्य बोलने से हानि भी होती है, तो सहनी चाहिए, क्योंकि अन्ततः सत्य बोलना ही लाभदायक होता है। अगर सभी लोग सत्य कदापि न बोलें, केवल असत्य बोलें, तो व्यवहार चलेगा ही नहीं। जैसे किसी को भूख लगी है, उसकी माँ ने पूछा कि भूख लगी है, तो वह कहे कि नहीं, तो रोटी ही नहीं मिलेगी। अगर भूख नहीं लगी है और बोले

कि हाँ भूख लगी है, तो रोटी लाने पर भी वह खा नहीं सकेगा। संसार में जितना भी असत्य का व्यापार चल रहा है, वह इस कारण से चल रहा है कि उसमें सत्य भी मिला हुआ है। दुनिया में जितना भी सुख दिखाई दे रहा है, वह सत्य के कारण है और जितना भी दु:ख दिखाई दे रहा है, वह असत्य के कारण है।

असत्य बोलकर हमने धन कमा लिया, तो क्या हम सुखी हो गए? आश्चर्य की बात है कि हमारे देश के राष्ट्रीय चिह्न में **'सत्यमेव जयते'** लिखा हुआ है, लेकिन जितना अपने भारत में असत्य बोला जाता है, सम्भवत: उतना विदेशों में नहीं बोला जाता। भारत धर्मप्रधान देश कहाँ रह गया है? मात्र बाह्य आडम्बर प्रधान देश बनकर रह गया है। तिलक, जनेऊ, चोटी, यज्ञ, तप, व्रत, उपवास, मन्दिर में जाना, लेट कर जाना, चलकर जाना ये सब बाह्य आडम्बर हैं। यज्ञ, जनेऊ, चोटी आदि का अपना महत्त्व है, लेकिन ये सब प्रतीक हैं। हमने प्रतीकों को ही धर्म समझ लिया है। हमने भारत के मानचित्र को ही भारत समझ लिया है। मानचित्र मार्गदर्शक है, लेकिन भारत नहीं है। कहीं 'गौ' शब्द लिखा हुआ है, तो वह दूध नहीं देगा, वह तो उसका संकेत मात्र है।

सत्य सुपर एक्सप्रेसवे जैसा मार्ग है, जो खाली पड़ा है, जिस पर आराम से दौड़ते जाओ, कहीं टकराव नहीं होगा और असत्य भीड़ वाले रोड के समान है, जिस पर कभी इधर, तो कभी उधर मुड़ना पड़ता है। गाड़ी सीधे चलेगी, तो सही चलेगी और इधर-उधर चलेगी, तो गाड़ी का नुकसान होगा। ऐसे ही असत्य बोलने से हमारे शरीर का भी नुकसान होता है। यह सब जानते हैं कि असत्य बोलने वाले के मन में कितना कम्पन होता है, धड़कनें बढ़ने लगती हैं, साँस फूलने लगता है, क्योंकि असत्य शरीर में विकार उत्पन्न करता है। जो असत्य शरीर में विकार उत्पन्न कर सकता है, वह ब्रह्माण्ड में क्यों नहीं? एक मनस्तत्त्व हमारे अन्दर है, जिससे समष्टि मन प्रभावित होता है, जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, जिससे सारी सृष्टि निर्मित है। जैसे हिंसा की तरंगें, पार्टिकल्स और वेव्स सबको प्रभावित करती हैं, वैसे ही बोला गया असत्य भी इन सबको प्रभावित करता है, क्योंकि वह भी इनके आधार (मनस्तत्त्व) को हिला रहा है।

आज दुनिया में आठ अरब लोग रहते हैं। अगर एक आदमी एक दिन में लगभग दस बार असत्य बोलता हो, तो अस्सी अरब बार असत्य बोला जाएगा। यदि असत्य के द्वारा किसी को भयभीत किया जाता है, तो भय की तरंगें, असत्यभाषण कर किसी को लोभ दिया जाता है, तो लोभ की तरंगें और कोई अहंकार या व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा में असत्य बोलता है, तो उसमें अहंकार की तरंगें जुड़ जाती हैं। कई लोग किसी बात को अच्छा बनाने के लिए असत्य बोलते हैं, जैसे बहुत से उपदेशक असत्य मिलाकर उपदेश देते हैं। सुनते हैं, एक बार डॉ० सम्पूर्णानन्द से किसी ने पूछा कि भारत सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र का देश है, फिर भी देश में इतना असत्य बोला जाता है, हम सत्यवादी क्यों नहीं बने? तो उन्होंने उत्तर दिया कि देश इसलिए सत्यवादी नहीं बन पाया, क्योंकि सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कहानी में बहुत सारा असत्य मिलाकर प्रचारित किया जाता है, सत्य में असत्य मिलाया जाता है। सत्य को मनोरंजक व अतिशयोक्तिपूर्ण बनाने के लिए या अन्य किसी कारण से असत्य बोला जाता है। सब जगह असत्य का व्यापार चल रहा है, तब धरती टिकेगी कैसे? क्योंकि धरती तो सत्य पर टिकी है।

जिस पर भूतादि प्राणी रहते हैं, वह भूमि कहलाती है। चाहे यह पृथ्वी हो या अन्य कोई लोक, प्राणी सब जगह रहते हैं, सूर्य में भी आग्नेय शरीर वाले प्राणी रहते हैं। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सत्य पर टिका हुआ है। आचार्य चाणक्य कहते हैं–

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

(चाणक्यनीतिदर्पणम् 5/19)

यह भी आश्चर्य की बात है कि मनुष्य के अलावा कोई भी प्राणी असत्य नहीं बोलता। गाय, गधे, कुत्ते, बिल्ली, साँप आदि कोई भी असत्य नहीं बोलता, वे कोई बहाना नहीं करते और किसी को भ्रमित भी नहीं करते। शेर मारेगा तो मारेगा ही, वह भ्रमित नहीं करेगा कि पूँछ हिलाए और फिर मार दे। कुछ कुत्ते चुपचाप काटते हैं और कुछ भौंककर काटते हैं, कुत्ता अगर पूँछ हिलाएगा, तो काटेगा नहीं, लेकिन

यह आदमी पूँछ हिलाएगा, तो भी काटेगा अर्थात् सामने से चापलूसी का दिखावा करेगा और अन्दर से घात करेगा। दुनिया में जो अपने आपको सबसे बुद्धिमान् मानता है, वह मनुष्य सबसे अधिक असत्य बोलता है। असत्य उसके जीवन में भरा पड़ा है। हमारे नेता, जिनको हम प्रमाण मानते हैं कि ये तो सत्य ही बोलेंगे, वैज्ञानिक सत्य ही बोलेंगे, लेकिन वर्तमान में इन्होंने ऐसी अफरा-तफरी मचाई हुई है कि सब असत्य बोल रहे हैं और असत्य से सारा पर्यावरण तन्त्र नष्ट हो रहा है। आज के पर्यावरण वैज्ञानिक केवल यही सोचते हैं कि सूर्य से गर्मी आती है और उसमें कोई परिवर्तन आता है, तो वही पर्यावरण प्रदूषण का कारण होता है। सारा दोष ग्लोबल वार्मिंग के नाम पर मढ़ देते हैं। उनसे पूछिए कि ग्लोबल वार्मिंग क्यों हुआ? इसका उत्तर उनके पास नहीं है। कभी मौसम खराब होगा, तो मौसम विभाग कहेगा कि पश्चिमी विक्षोभ के कारण ऐसा हो रहा है, पूर्वी विक्षोभ, पश्चिमी विक्षोभ आपस में टकरा गए, इसलिए ऐसा हो रहा है। वायुमण्डल को विक्षुब्ध किसने किया? हमने विक्षुब्ध किया, असत्य बोलकर, लोभ, हिंसा, अहंकार, काम, क्रोध, ईर्ष्या की तरंगों से। उनको इस बात का पता ही नहीं चलता, क्योंकि उनका क्षेत्र पार्टिकल तक है। वैज्ञानिक आज तक जान नहीं पाए कि वे पार्टिकल कैसे हैं, किससे बने हैं, उनके क्या घटक हैं? जब सत्य का पता नहीं है और कोई बताए, तो उसे समझने का प्रयास करना चाहिए।

सत्य बोलने में हृदय सामान्य रहता है, सरल रहता है, निष्कपट रहता है और असत्य बोलने से हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं, इसलिए मशीन पकड़ लेती है। असत्य ने हमारे शरीर को अन्दर तक हिला दिया है, लेकिन कोई भी इस विषय पर सोचने के लिए तैयार नहीं है। असत्य भी इतने दावे और निर्लज्जता से बोलते हैं, ताकि सबको सत्य लगे। उनकी निर्लज्जता देखकर हमें लगता है, वे सही बोल रहे होंगे। जैसे अभिनेता बोलते हैं, वैसे ही आज के मनुष्य बोलते हैं। जैसे कोई हलवाई हनुमान् बने और उससे पूछा जाए कि तुम कौन हो? तो वह कहेगा- हनुमान्, हलवाई कहने पर नाटक कैसे चलेगा, इसलिए असत्य बोलता है। सर्वहित के लिए कोई ऐसा धारावाहिक बना रहा है, तो अच्छी बात है। लेकिन यदि लोभ के कारण बना रहा है, तो वह असत्य मानवता के लिए घातक है।

6. सत्य ही जीवन का सुन्दर संगीत

अब हम भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के दूसरे लक्षण पर चर्चा को आगे बढ़ाते हैं। जैसा पूर्व में बताया कि महर्षि व्यास के अनुसार **'जैसा आत्मा में हो, वैसा मन में हो, जैसा मन में हो, वैसा वाणी में हो और वैसा कर्म में भी हो, लेकिन सबके हित में हो।'**

अगर आत्मा, मन और वाणी में समानता है, तो हमारे जीवन का संगीत अच्छा रहेगा। जैसे हारमोनियम का एक स्वर कहीं बजे, तो दूसरा कहीं ओर अथवा हारमोनियम कुछ गा रहा है, गाने वाला कुछ और। ढोलकवादक कुछ बजा रहा है, मजीरे वाला कुछ और, तो संगीत बिगड़ जायेगा। इसी प्रकार हमारे जीवनरूपी संगीत के लिए हमारे सभी इन्द्रियरूपी यन्त्रों में समानता व एकरूपता होनी चाहिए। कठोपनिषद् में कहा है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

(कठोपनिषद् 1.3.3–4)

अर्थात् आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को लगाम, इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को मार्ग बताया है। अगर रथी अर्थात् रथ के मालिक की आज्ञानुसार सारथी रथ चला रहा है, लगाम कसकर पकड़े हुए है और लगाम से घोड़े नियन्त्रित हैं, तो वह सही मार्ग पर जायेगा। नहीं तो मालिक कुछ कहे, सारथी कुछ करे और सारथी के हाथ में लगाम भी कमजोर हो, तो घोड़े कहाँ जायेंगे, इसको कोई नहीं जानता। इसलिए जीवन के संगीत में इनकी एकरूपता होनी चाहिए और उस एकरूपता का नाम ही सत्य है, जिसमें कहीं कोई उलझन, रुकावट, तोड़-मरोड़ नहीं है। जैसे एक आदमी अन्धे को अन्धा बोल रहा है, लेकिन

है तो सत्य, बिल्कुल एकरूपता है। आत्मा भी जानता है कि यह व्यक्ति अन्धा है, मन भी जानता है और फिर वाणी भी अन्धे को अन्धा बोले, तो क्या यह सत्य हो गया? इसलिए महर्षि व्यास ने कहा- नहीं, यह सत्य नहीं है। सत्य ऐसा होता है, जो सबके हित में हो। अन्धे को अन्धा कहकर चिढ़ाने में किसी का हित नहीं, क्योंकि इससे उसका कोई हित नहीं होगा और हमारा भी कोई हित नहीं होगा तथा किसी अन्य का भी हित नहीं होगा, इसलिए यह सत्य नहीं। भगवान् ब्रह्मा ने महाभारत में कहा है -

'सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।'

अर्थात् सत्य बोलना श्रेष्ठ है, लेकिन सत्य का ज्ञान बहुत कठिन है। फिर लिखा है कि जो प्राणियों के अत्यन्त हित में हो वही सत्य है, यही धर्म मुख्य लक्षण है। जैसे एक चोर चोरी करते हुए पकड़ा गया और हमने उसे बचाने के लिए असत्य बोल दिया, फिर कहें कि उसका हित हुआ। वस्तुतः उसका भी हित नहीं हुआ, बल्कि अनेकों का अहित हो गया। क्योंकि जब तक वह जीयेगा, तब तक चोरियाँ ही करेगा, इससे कितनों का अहित होगा? इसलिए उस चोर की रक्षा के लिए बोला गया असत्य, तो असत्य ही है। लेकिन अगर धर्म की रक्षा के लिए असत्य बोल दिया जाए, जैसा महाभारत में हुआ- 'अश्वत्थामा मारा गया'। धर्मराज को यह बोलने की प्रेरणा साक्षात् धर्म के रूप श्रीकृष्ण भगवान् ने दी थी। उनके शत्रु भी कहते थे-

'यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।'

अर्थात् जहाँ कृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है। कृष्ण ने अधर्म कैसे कर दिया? यही महर्षि ब्रह्मा व महर्षि व्यास की परिभाषा थी कि जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित हो, वही धर्म है। द्रोणाचार्य चले गये, लेकिन धर्म की विजय हो गई, क्योंकि द्रोणाचार्य अधर्म का पक्ष ले रहे थे। वे असत्य की साक्षात् मूर्ति बन गए थे। इसलिए वह मिथ्याभाषण नहीं, अपितु सत्य ही था।

अब भगवान् श्रीराम के जीवन में चलते हैं। श्रीराम जब वन को जा रहे हैं,

सुमन्त्र उनको छोड़ने जा रहे हैं। तब महाराज दशरथ पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं और कह रहे हैं 'सुमन्त्र रथ रोको' तथा श्रीराम कह रहे हैं कि 'सुमन्त्र रथ आगे बढ़ाओ'। सुमन्त्र पूछते हैं कि महाराज कह रहे हैं कि 'रथ रोको' और आप कह रहे हैं कि 'रथ आगे बढ़ाओ', मैं किसका आदेश मानूँ? तब श्रीराम कहते हैं कि 'तुम आगे चलो और अगर महाराज पूछेंगे कि रथ क्यों नहीं रोका, तो कह देना कि मैंने सुना नहीं'। भगवान् श्रीराम ने ऐसा इसलिए कहा, क्योंकि इसी में सबका हित है। वे कहते हैं कि हम जितनी देर यहाँ रुकेंगे, पिताजी का मोह बढ़ेगा और नागरिक हमारे पीछे आते जायेंगे, जिससे सबको कष्ट होगा। इसलिए यहाँ से जितना शीघ्र हम निकल जाएँ, उतना ही सबके हित में है। यहाँ यह मिथ्याभाषण नहीं, अपितु सत्यभाषण है, क्योंकि इसी में सबका हित है। इसमें भगवान् श्रीराम का कोई स्वार्थ नहीं। अगर वे स्वार्थी होते, तो राजा बन जाते। क्योंकि महाराज दशरथ ने स्वयं कहा था कि मुझे बन्दी बनाकर राजा बन जाओ। उनसे पहले भाई लक्ष्मण ने भी ऐसा ही कहा था।

अब ऋषि दयानन्द के जीवन में आएँ। जब उन्हें वैराग्य हुआ और शुद्ध चैतन्य बनकर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले ली। तब एक बार वे सिद्धपुर के मेले में आए। वहाँ उन्हें एक वैरागी ने पहचान लिया कि ये तो मूलशंकर है, क्योंकि वे प्रसिद्ध व्यक्ति के प्रसिद्ध पुत्र थे। उन्होंने उनके पिताजी को बता दिया कि आपका पुत्र तो साधु होकर, सिद्धपुर के मेले में जा रहा है। तब उनके पिताजी अपने सिपाहियों को लेकर आ गए और उनको पकड़ लिया। शुद्ध चैतन्य ने कहा- पिताजी! अच्छा हुआ, आप आ गए। मैं तो आपके पास आने ही वाला था। बहकावे में आकर साधु बन गया। फिर भी उनके पिताजी ने पहरा लगा दिया कि इस पर कड़ी दृष्टि रखना। उनके भगवे वस्त्र फड़वा दिए तथा दूसरे वस्त्र पहनाए। रात्रि में जब सभी पहरेदार सो गए, तब शुद्धचैतन्य उठे तथा लोटे में जल लेकर चल दिए और यह सोचा यदि कोई पूछेगा कि कहाँ जा रहे हो, तो बोल दूँगा कि शौच के लिए जा रहा हूँ और जाकर एक वटवृक्ष की चोटी पर बैठ गए। पिताजी ने सिपाहियों से पता कराया, लेकिन बहुत खोजने पर भी वे नहीं मिले। यह पिता-पुत्र का अन्तिम मिलन था। यहाँ भी असत्य बोला गया, लेकिन यह सर्वहित में होने के कारण सत्य था। सत्य

बोल देते, तो पिटाई भी होती, वापस घर भी जाना पड़ता। इसलिए महर्षि व्यास ने लिखा कि जिससे सब प्राणियों का हित हो, वही सत्य है। अब दुकानदार व्यापार चलाने के लिए असत्य बोल दे और यह कहे कि इसमें मेरा भला है, ऐसा उचित नहीं, सबका हित होना चाहिए। वह सोचे कि ठगी से धन कमाने में भी उसका हित नहीं है, क्योंकि आज कमा लेगा, बाद में उसका फल भोगना पड़ेगा।

अब हित तथा रुचि में थोड़ा अन्तर समझते हैं-

असत्य सर्वहित के लिए बोला जा सकता है, रुचियों के लिए नहीं। रुचियाँ सबकी अलग-अलग होती हैं, कभी एक हो ही नहीं सकतीं। लेकिन हित सबके समान होते हैं। हित का अर्थ होता है- 'जिससे अपना धारण-पोषण होता हो' तथा रुचि का अर्थ होता है- 'जो इन्द्रियों व मन को अच्छा लगता हो'। जैसे- कोई मधुमेह का रोगी है, उसे मिठाई बहुत अच्छी लगती है। इसमें उसकी रुचि है, लेकिन हित नहीं। चोर को चोरी करना बहुत अच्छा लगता है, लेकिन उसमें उसका हित नहीं है, वह लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ रहा है। रुचि की पूर्ति के लिए असत्य नहीं बोला जा सकता। किसी दोषी को बचाने के लिए असत्य नहीं बोला जा सकता, लेकिन धर्म, देश, निर्दोष आदि की रक्षा के लिए बोला गया असत्य भी सत्य हो जाता है।

ऐसा एक बार मैंने कहीं प्रवचन में कह दिया, वहाँ एक विद्वान् बोला कि आप तो असत्य बोलने का लाइसेंस दे रहे हैं। असत्य राजा या क्षत्रिय बोल सकता है, लेकिन ब्राह्मण या योगी कभी असत्य नहीं बोल सकता। तो मैंने कहा- इसका अर्थ है कि आपने कुछ पढ़ा ही नहीं। महाभारत में भीष्म पितामह बहुत प्रसिद्ध क्षत्रिय थे। उन्होंने राजा के लक्षण बताए हैं, उनमें से दो मुख्य लक्षण हैं- जितेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण वाला होना चाहिए और सत्यवादी होना चाहिए। अतः राजा को असत्य बोलने का कोई अधिकार नहीं है। वैसे अधिकार तो किसी को भी नहीं है, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि क्षत्रिय असत्य बोल सकता है। मान लीजिए कहीं मेला लगा है, वहाँ कोई आतंकवादी मिल गया और वह पूछता है कि क्या लोग उधर इकट्ठे हैं? पूछने पर पता चलता है कि वह बम डालेगा। यदि

रास्ता बता दिया कि उधर है, यह कहने को तो सत्य है, लेकिन वास्तव में असत्य है। क्योंकि इससे अनेकों प्राणियों का अहित हो रहा है।

आचार्य चाणक्य ने पदे-पदे जो किया, उसमें उस महापुरुष का कोई स्वार्थ नहीं था, उन्होंने जो भी किया राष्ट्र एवं सर्वहित के लिए किया। अगर राजा धनानन्द अच्छा होता, तो वे कभी भी धनानन्द को हटाने की प्रतिज्ञा नहीं करते। सम्भवत: वह अति दुष्ट रहा होगा।[२] ऐसे दुष्टों को मारने के लिए, किसी भी प्रकार से मारना ही उद्देश्य रहना चाहिए, क्योंकि वही सत्य है।

सत्य यह है कि धर्म की जय होनी चाहिए और असत्य यह है कि अधर्म की जय होनी चाहिए। क्योंकि अहिंसा धर्म का मूल है, जो सत्य हमें अहिंसा अर्थात् सबका भला करने की ओर ले जाता हो, वही सत्य है और जो सत्य, अहिंसा के विरुद्ध हो, वह सत्य नहीं, अपितु सत्य का आभासमात्र है। हमारे यहाँ भी कुछ ऐसे हैं, जो इसी बात पर श्रीराम एवं श्रीकृष्ण को योगी ही नहीं मानते, वे कहते हैं कि उन्होंने युद्ध भी किये, हिंसा भी की, असत्य भी बोला। उन्हें अंक भी देते हैं कि श्रीराम, श्रीकृष्ण 70-80 प्रतिशत योगी थे। परीक्षक, परीक्षार्थी से ज्यादा योग्य होता है। इसका अर्थ हुआ कि उन्हें अंक देने वाले स्वयं को श्रीराम और श्रीकृष्ण से बड़ा योगी समझते हैं। यह हमारे एवं सम्पूर्ण मानव समाज के लिए लज्जास्पद बात है कि ऐसे लोग हमारे समाज में हैं। जिसमें सबका हित हो एवं अहिंसा की पूर्ति हो, वही सत्य है। इसके विपरीत सब असत्य है।

एक मुकदमे में दो पक्ष होते हैं, एक पक्ष जानता है कि वह असत्य बोल रहा है। वह जानता है कि उसने किसी का मर्डर किया है, फिर भी कहता है कि मैंने नहीं किया और उसका वकील भी केवल लाभ के लिए ही उसका समर्थन करता है। असत्य केवल लोभवश, क्रोधवश, प्रशंसावश अथवा निन्दावश बोला जाता है। इस प्रकार एक असत्य, बहुत सारी नकारात्मक तरंगों को जन्म देता है। इसलिए सारा ब्रह्माण्ड उस असत्य से प्रभावित है। अनजाने में बोला गया असत्य, उतना

[२] जैसा हम धारावाहिक में देखते हैं।

बड़ा अपराध नहीं है। इसलिए भगवान् शिव ने कहा कि जो अधर्म वा अपराध अनजाने में हो जाए, वह क्षम्य है। वह प्रायश्चित से, जप से, दानादि से मिट सकता है। लेकिन जो अपराध जानबूझकर किया जाता है, वह कभी क्षम्य नहीं हो सकता।

7. माँसाहारियों को मेरी चुनौती

अब हम भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के तीसरे लक्षण पर आते हैं-

धर्म का तीसरा लक्षण है- सभी प्राणियों के प्रति दया। सत्यार्थ प्रकाश की दृष्टि से देखा जाए, तो दया हिंसा का विपरीत है और अहिंसा का ही रूप है। लेकिन भगवान् शिव ने दया को अलग रखा है। सभी प्राणियों के प्रति दया, ऐसा कहना बहुत सरल है, किन्तु इसे जीवन में उतारना बहुत कठिन है। आज संसार में जितने भी माँसाहारी हैं, वे जानवरों को स्वयं मारकर माँस नहीं खाते, अगर वे स्वयं मारकर खाने लग जाएँ, तो उनके अन्दर भी दया का भाव जग जायेगा और वे माँस खाना छोड़ देंगे। जो माँसाहारी, बाजार या होटलों में जाकर माँस खाते हैं, उनको बूचड़खाना दिखाना चाहिए। जो बूचड़खाने का दृश्य होता है- छटपटाते पशु, नालियों में बहता हुआ खून, पशुओं की चीत्कार व करुण-क्रन्दन। अधिकांश मनुष्य इसको सहन नहीं कर पाएंगे। खाना अलग बात है, लेकिन ऐसा रक्तपात करना बिल्कुल अलग बात है। जो हमारे देश की योजनाएँ बनाते हैं कि गाय, भैंस, मछली, बकरी, मुर्गे आदि को मार कर आय बढ़ाएंगे। प्रधानमंत्री से लेकर सांसद तक, मुख्यमंत्रियों से लेकर विधायकों तक, इन सबको एक बार बूचड़खाना देखने अवश्य जाना चाहिए। हो सकता है कि उनका हृदय परिवर्तित हो और वे ऐसी योजनाएँ न बनायें।

परमात्मा ने मनुष्य को स्वभाव से ही दयालु बनाया है, इसलिए वह पशुओं को स्वयं मारकर नहीं खा सकता। जब सबसे पहले मनुष्य ने किसी पशु को मारा होगा, तो उसके अन्दर भी दयाभाव आया होगा, लेकिन धीरे-धीरे वह क्रूर होता चला गया। मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु में दयाभाव नहीं होता, उसके अन्दर बुद्धि नहीं होती कि वह किसी पर दया करे। शेर माँस खाता है, तो खायेगा ही, गाय अगर किसी को मारती है, तो मारेगी ही, दया नहीं करेगी। वैसे गाय मारती भी नहीं है, आत्मरक्षा करती है और आत्मरक्षा का अधिकार सबको है। अगर दस पशु कहीं जा रहे हों और एक पशु कहीं गड्ढे में गिर जाए, तो कोई पशु उसे नहीं

बचाएगा, क्योंकि उनमें बचाने की बुद्धि नहीं है। लेकिन अगर वह पशु उनके परिवार का है, तो उनको भी दया आती है और वे भी शोक मनाते हैं। लेकिन कोई दूसरा है, तो दया नहीं आती। बन्दर मर जाए, तो अनेक बन्दर इकट्ठे हो जाते हैं, लेकिन कोई कुत्ता नहीं आएगा। एक कौवा मर जाये, तो बहुत से कौवे आ जायेंगे और मिलकर शोक मनाएँगे, लेकिन केवल कौवे के लिए, अपनी जाति के लिए। परिवार के सदस्यों के प्रति दयाभाव तो उनमें भी है, लेकिन उनमें यह धर्म नहीं है कि सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव हो।

मनुष्य ऐसा प्राणी है, जिसमें सबके प्रति दयाभाव स्वाभाविक रूप से होता है, इसी को धर्म कहा है। जैसे हिंसा से बड़ा अधर्म कोई नहीं है, वैसे दया से बड़ा धर्म भी कोई नहीं है। आज संसार में जो हिंसा की तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, उनको निष्प्रभावी करने का एकमात्र उपाय यह है कि हमारे अन्दर दया, करुणा व प्रेम की तरंगें उत्पन्न हों और ये उत्पन्न तभी होंगी, जब हम एक बार हिंसा के भयंकर रूप को देख लेंगे। माँस खाने वालों को पता ही नहीं है कि माँस कैसे मिलता है? बिना हिंसा के कोई माँस प्राप्त ही नहीं कर सकता। प्राणिमात्र के प्रति दया का अर्थ यह है कि दया में भेदभाव नहीं होना चाहिए, जैसे पशु-पक्षियों में भेदभाव होता है, उनकी केवल अपनी जाति के प्रति दया होती है। लेकिन मनुष्य की तो अपनी जाति के प्रति भी दया बिल्कुल नहीं है। यदि मनुष्य, मनुष्य जाति के प्रति भी दया करने लग जाए, तब भी उसका स्तर बहुत ऊँचा हो जायेगा। आज जो अहिंसा की बात की जाती है, वह केवल मनुष्य तक ही सीमित है।

पशुओं को मार कर खाने वाले बौद्ध देश, भगवान् बुद्ध के अनुयायी हैं। जो भगवान् बुद्ध अहिंसा को मूल मानकर चले थे, आज उनके सारे अनुयायी माँसाहारी कैसे हो गए? क्या कारण रहा? शायद उन्होंने सोचा होगा कि अहिंसा का व्यवहार केवल मनुष्य के लिए है, दूसरे प्राणी तो हमारा भोजन हैं। यह अच्छी बात है कि जैनों ने आज तक ऐसा नहीं होने दिया, वे आज भी अहिंसा के प्रति अडिग हैं, चोरी-छिपे कोई माँस खाता हो, तो अलग बात है। जब प्राणिमात्र के लिए दया होती है, तो हमारे अन्दर से दया की तरंगें प्रवाहित होती हैं, जो ब्रह्माण्ड में विद्यमान ईर्ष्या, क्रोध, हिंसा की तरंगों को शान्त करने में सहायक होती हैं। जैसे- पॉजिटिव

चार्ज को, नेगेटिव चार्ज शान्त कर देता है और दोनों न्यूट्रल हो जाते हैं, वैसे ही हिंसा और पीड़ा की तरंगों को प्रेम, करुणा व दया की तरंगें शान्त कर सकती हैं और कोई उपाय नहीं है। इसलिए संध्या में मंत्र बोलते हैं–

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ (अथर्ववेद 3.27.3)

जो हम पर क्रोध वा हमसे द्वेष करते हैं या हम जिन पर क्रोध वा जिनसे द्वेष करते हैं, वह शान्त हो जाए। हे ईश्वर! उसको हम तेरे न्यायरूपी दण्ड के लिए समर्पित करते हैं। बूचड़खाने को देखकर मनुष्य द्रवित हो जायेगा, पर शायद कुछ समय के लिए, लेकिन बहुत सारे लोग बदल जायेंगे। बहुत लोगों को मारने में आनन्द आता है, वे इतने क्रूर होते हैं कि पशु को मारेंगे और वो भी हलाल करके। पशु को ऐसे मारना कि जिससे अधिक से अधिक कष्ट हो, इसको हलाल कहते हैं। ऐसे लोग अहिंसा व दया सीख ही नहीं सकते। उनके शब्दकोश में, दया नाम का शब्द होता ही नहीं है। डाकू कुछ पैसों के लिए, किसी की भी हत्या कर देते हैं।

कई साल पहले मैंने देखा कि जलपाईगुड़ी में रेल की टक्कर हुई थी, लगभग 475 लोग मरे थे। वहाँ कुछ लोग, मरे हुए लोगों की जेब टटोल रहे थे। उनका उद्देश्य यह नहीं था कि मृतकों को निकालें, बल्कि उनका उद्देश्य यह था कि जेब में से कुछ मिल जाए, तो ठीक है। किसी की सोने की चेन ले ली, किसी की अंगूठी ले ली, किसी का पर्स ले लिया। जो यह कार्य कर रहे थे, क्या वे भी मनुष्य थे? मनुष्य सबसे खतरनाक हो गया, जबकि परमात्मा ने मनुष्य को सबसे अच्छा बनाया था। कोई भी प्राणी हिंसा नहीं करता, बल्कि वह भोजन के लिए, ऐसा करता है। माँसाहारी प्राणियों को माँस खाने के लिए ही बनाया गया है, तो वे भूख लगने पर, मारेंगे ही। लेकिन मनुष्य अकारण या दुश्मनी से मार देता है। हम यह सोचते हैं कि सभी प्राणियों के प्रति दया की भावना हो अर्थात् सभी प्राणी सुखी हों, प्राणियों में सद्भावना हो, लेकिन उस सद्भावना के लिए हम क्या करते हैं?

आज भाई की भाई के प्रति दया नहीं है। एक भाई बीमार पड़ा हो और दूसरे भाई को व्यापार के किसी कार्य से जा रहा हो, तो ऐसे अनेक होंगे, जो व्यापार के

कार्य को नहीं रोकेंगे, भले ही भाई मर जाए। महानगरों में यदि कोई पड़ोसी मर जाए, तो भी किसी को कोई दया वा संवेदना नहीं होती। आज सबसे बड़ा धन हो गया, जिस धन के लिए, मनुष्य सब कुछ समर्पित कर रहा है। धन का पता नहीं कब और कहाँ चला जाए। धन से तृप्ति भी नहीं होती। निरुक्तकार के अनुसार जिससे तृप्त हुआ जाए, वह धन है। क्या आज तक कोई इस धन से तृप्त हुआ है? कठोपनिषद् का कथन है–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः अर्थात् वित्त से कोई तृप्त नहीं होता।

अगर भोजन से तृप्ति न हो अर्थात् भूख ही न मिटे, तो वह भोजन किस काम का? कल्पना करें कि बार-बार खाते रहें, लेकिन भूख ही न मिटे, तो वह भोजन कैसा? लेकिन धन ऐसा भोजन हो गया कि इससे तृप्ति ही नहीं होती, वस्तुतः वह धन नहीं, निधन है। उस धन को पाने के लिए दया, प्रेम, भाईचारा, करुणा सब समाप्त हो गया।

आज पूरा देश अर्थप्रधान है। यह शिक्षा कहीं नहीं दी जाती कि दया करो, क्योंकि यह पाठ्यक्रम में नहीं है। यह किसी का विषय नहीं है, क्योंकि हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है, जहाँ दया, करुणा, सत्य, प्रेम इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जो धर्मनिरपेक्ष कहते हैं, उन्हें धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा ही नहीं पता। धर्मनिरपेक्ष अर्थात् अधर्म के सापेक्ष वा धर्म के प्रति उदासीन। उन्होंने मजहबों को ही धर्म समझ लिया।

अगर हम सब प्राणियों के प्रति दया कर सकते हैं, उनकी कुछ सहायता कर सकते हैं, तो करने का प्रयास करें और नहीं कर सकते, तो मन में करुणा अवश्य जगनी चाहिए कि मैं किसी के दुःख को कैसे दूर कर सकता हूँ? किसी दुःखी को देखकर, अगर हमारे हृदय में दया का भाव न आए, किसी रोगी को देखकर सेवा का भाव न आए, किसी नंगे को देखकर वस्त्र देने का भाव न आए, किसी भूखे को देखकर भोजन देने का भाव न आए, किसी मरते हुए को देखकर उसके प्राण बचाने का भाव न आए, तो समझ लेना चाहिए कि हम मनुष्य नहीं हैं, हम खतरनाक

पशु हैं। देने के लिए धन चाहिए, हमारे पास धन नहीं है, लेकिन हृदय में तो ऐसी भावना उत्पन्न हो कि यदि मेरे पास धन होता, तो मैं सबके दुःख दूर करने का प्रयास करता और निर्धनों की सहायता करता। सहायता का अर्थ यह भी नहीं है कि ऐसे ही बांट देना, बल्कि उन्हें पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करना चाहिए। दया हमारे अन्दर शान्ति उत्पन्न करती है। पशु आत्मरक्षा के लिए मारता है और आत्मरक्षा के लिए सबको मारने का अधिकार है।

प्रश्न - क्या जानवरों के द्वारा अन्य पशुओं को मारने से तरंगें नहीं उठेंगी?
उत्तर - जो पशु मरेगा, उससे तरंगें तो उठेंगी, क्योंकि उस पशु को पीड़ा होगी। लेकिन कोई भी पशु इस प्रकार मारता है कि वह तुरन्त मर जाए। जैसे शेर सीधा गला पकड़ता है। जब तक उस पशु को पीड़ा होगी, तब तक पीड़ा की तरंगें अवश्य उठेंगी। लेकिन शेर के अन्दर से क्रोध की तरंगें नहीं उठेंगी, क्योंकि वह क्रोध, अहंकार या लोभवश नहीं मार रहा, अपितु भूख मिटाने के लिए मार रहा है। उसका पेट भर गया, तो वह किसी जानवर को नहीं मारेगा। लेकिन मनुष्य क्रोधवश, लोभवश, ईर्ष्यावश, अहंकारवश, शत्रुतावश मारेगा, तो इनकी तरंगें साथ में मिल जायेंगी।

अहिंसा का अर्थ होता है- **सभी प्राणियों से वैरत्याग अर्थात् सबसे प्रीति करना।** देखा जाए तो दया अहिंसा में समाहित है, क्योंकि सबसे प्रीति होगी, तभी दया करेंगे। लेकिन हमारी किसी से प्रीति नहीं है, हम किसी से मिलना भी नहीं चाहते, कोई सम्बन्ध भी नहीं रखते, फिर भी किसी को दुःखी देख लें, तो अन्दर से करुणा का भाव आ जाएगा। जैसे हम रास्ते में जा रहे हैं और किसी पशु को दुःखी देखा, तो दया उमड़ आई। वैसे ही प्राणिमात्र के प्रति प्रीति में भी, यही भाव होगा। प्रीति नहीं रहेगी, तो सत्य सत्य नहीं रहेगा और दया दया नहीं रहेगी। प्रीति अनिवार्य है, क्योंकि अहिंसा सबका मूल है। **'प्रीति'** बहुत विस्तृत शब्द है। कोई दुःखी नहीं हो, तब भी उससे प्रीति करो, लेकिन दया दुखियों पर होती है।

योगदर्शन में लिखा है- **'सुखी से मित्रता करो, दुःखी को देख कर दयालु बनो, सज्जनों को देखकर प्रसन्न रहो और दुष्ट जनों की उपेक्षा करो'।** यही

संसार में व्यवहार करने का तरीका है। दया दु:खी के लिए होती है, लेकिन प्रीति सबके लिए होती है। भगवान् शिव ने जो धर्म का तीसरा लक्षण बताया, उसके अनुसार हम सभी प्राणियों के प्रति दया का भाव जगाएँ और सब माँसाहारियों से कहें कि तुम्हें माँस खाना है, तो स्वयं मारकर माँस खाकर दिखाओ। आइए, हम भी इस तीसरे लक्षण को अपनायें और दयालु बनें।

8. दया से ब्रह्माण्ड में संतुलन कैसे होता है?

महर्षि पतञ्जलि ने कहा कि दु:खी के प्रति दया होनी चाहिए। अब पहले यह देखें कि दया कौन कर सकता है? दया तथा जितने भी धर्म के लक्षण हैं, वे किसी में तब तक नहीं आयेंगे, जब तक उसको यह विश्वास नहीं हो जायेगा कि सभी प्राणियों में मेरे जैसा आत्मा है और तब तक न तो अहिंसा होगी और न ही दया होगी। सबसे पहले उसको यह विश्वास होना चाहिए कि सभी प्राणी चेतन हैं, जड़ नहीं। उसे परमात्मा की सत्ता पर भी विश्वास होना चाहिए और सब प्राणी उस परमात्मा के परिवार के सदस्य हैं, ऐसा भी विश्वास होना चाहिए, नहीं तो दया नहीं आयेगी। यन्त्र किसी पर दया नहीं करता, वह अपने मालिक को भी मार सकता है।

यदि संसार के लोग अपने को रोबोट समझते रहे व चेतन की सत्ता को नकारते रहे, तो उनमें धर्म के कोई भी लक्षण कभी नहीं आयेंगे और मार-काट, लूट, दु:ख देना, छीना-झपटी आदि चलती रहेगी। जो भी आज विज्ञान की बात करते हैं, अगर वे कहते हैं कि चेतनतत्त्व नहीं है, तो वे सबसे बड़े अज्ञानी हैं, कहने को भले ही वे वैज्ञानिक हों। उनका विज्ञान कभी भी सच्चाई को सामने नहीं ला पाएगा, भले ही वे कितने भी रिसर्च क्यों न कर लें। जब तक उनके मन में यह विश्वास नहीं होगा कि चेतना है और इसकी अनिवार्यता भी है, क्योंकि चेतना के बिना सृष्टि न तो चल सकती है और न बन ही सकती है। इसके बिना कोई भी क्रिया नहीं हो सकती। जब सबके मन में ऐसा विश्वास होगा, तभी उनके अन्दर दयाभाव आ सकेगा।

जब कोई मनुष्य किसी को सताता वा मारता है, तो वह सोचता है कि यह मेरा भोजन है। उसकी छटपटाहट, चीत्कार और करुण क्रन्दन उसको सुनाई नहीं देता। उसे लगता है कि जैसे मशीन आवाज करती है, वैसे ही ये भी आवाज कर रहा है। लेकिन वही छुरी, जब उसके गले पर चलाई जाए और पूछा जाए कि तुम रोबोट हो वा चेतन? रोबोट तो रोएगा नहीं, उसे दु:ख नहीं होगा। किसी कसाई की छुरी को लेकर, कसाई की गर्दन पर रखकर पूछा जाए कि बोलो तुम क्या हो? क्या

रोबोट हो, जड़ हो या तुम्हारे अन्दर चेतना है? अगर तुम्हारे अन्दर चेतना नहीं है, तो तुम्हें भी मार देना चाहिए, तब वह गिड़गिड़ाते हुए स्वयं को चेतन मानकर प्राणों की भीख माँगने लगेगा, इस कारण चेतना पर विश्वास अनिवार्य है।

आज संसार में जो सुखी एवं ऐश्वर्यसम्पन्न लोग हैं, उनको यह दिखाई नहीं देता कि दु:खी कौन हैं? हमारे देश के प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, राष्ट्रपति, अन्य मन्त्री, बड़े ऑफिसर एवं राज्यपाल आदि कहीं जाते हैं, तो उनको दु:खी दिखाई नहीं देते, क्योंकि उनको दु:खी लोगों से दूर-दूर ही ले जाया जाता है। उनके चारों ओर सुरक्षा घेरा इसलिए लगाया जाता है, ताकि वे सामान्य आदमी से मिल भी न सकें और सामान्य आदमी की पीड़ा उन्हें पता ही न चले। कुछ सुरक्षा घेरा हो सकता है और कुछ छुपाने का भाव हो सकता है कि वे किसी गरीब को न देखें। अगर कोई अच्छा राजा वा मन्त्री है, तो वह देखेगा और देखेगा, तो करुणा भी आएगी और उसी के अनुसार नीतियाँ भी बनाएगा, लेकिन नौकरशाही उन्हें देखने नहीं देती। निचले नेता भी उन्हें देखने नहीं देते। क्या कोई अधिकारी उन्हें दिखाएगा कि इतनी गरीबी क्यों है?

पहले राजा सुरक्षा के घेरे में चलते थे, लेकिन आम जनता से भी मिलते थे। कभी भी कोई भी याचक, उनके दरवाजे पर घण्टा बजाकर आ जाता था। आज की तरह बैरियर नहीं थे कि 5-6 वर्ष पत्र लिखते रहो और कोई उत्तर ही नहीं। ऐसा पहले नहीं होता था। उनको क्या पता कि दु:ख क्या होता है? कोई गरीबी से उठकर ऊपर पहुँचता है, वह भी अपना धरातल भूल जाता है कि मैं भी कभी गरीब था। आज देखें तो लोग पुरुषार्थहीन और अनेक दुर्व्यसनों से ग्रस्त हैं, वे गरीब हैं और होने भी चाहिए, उन पर कोई दया नहीं होनी चाहिए। उन पर यह दया करें कि उनको सिखाएँ कि तुम ये दुर्व्यसन छोड़ो, क्योंकि कभी-कभी गरीबी बुद्धि हर लेती है। कहीं कोई गरीब शराब पी रहा है, तो उसको गाली देना और धनी शराब पी रहा है, तो उसकी चापलूसी करना, ये नीति ठीक नहीं है, यह पक्षपात है। जो सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करने के लिए कहा गया था, वह यहीं समाप्त हो गया।

दुर्व्यसन अगर गरीब के देख रहे हैं, तो अमीर के भी देखें अथवा गरीब को

यह समझाएँ कि अमीर तो पी रहा है, पीने दो और मरने दो उसको, लेकिन तुम्हारा धन, मेहनत का धन है। धनी से अधिक परिश्रमी गरीब मरता है। सारा दिन परिश्रम करके शराब पी लेता है या और कुछ नशे कर लेता है, तो उसका जीवन कैसे चलेगा? उनको कहा जाए कि संसार को पुरुषार्थी लोगों की जरूरत है। जो पुरुषार्थहीन हैं, चाहे वे गरीब हों वा अमीर, दोनों मर जायें, तो कोई दिक्कत नहीं, धरती से भार कम होगा।

महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा था–

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥

अर्थात् दो प्रकार के लोगों को संसार में जीने का कोई अधिकार नहीं है, उनको मार देना चाहिए। फिर बताते हैं कि कैसे मारना चाहिए? गले में बड़ा सा पत्थर बाँधकर, समुद्र में फेंक देना चाहिए, ताकि तैरकर भी न आ सकें। अब बताते हैं कि किसे मारना चाहिए? एक उसे जो धनी होकर दया, दान व त्याग नहीं करता और दूसरा उसे जो गरीब होकर परिश्रम नहीं करना चाहता।

दया के पात्र वे हैं, जो पुरुषार्थी हैं और कुछ करना चाहते हैं, उनकी सहायता करें, ताकि वे कुछ बन सकें। ऐसे ही वोटों के लिए खैरात बाँटना देशहित में नहीं है, इससे देश की अर्थव्यवस्था नष्ट होगी। लेकिन आज जितना गरीबों को बाँटा जाता है, उससे कई गुना ज्यादा धनिकों को बांटा जाता है। किसानों का थोड़ा बहुत लोन माफ होगा, उसमें भी तरह-तरह की परेशानियां होती हैं। उधर उद्योगपतियों के लाखों-करोड़ों माफ हो जाते हैं। उन पर दया करने की जरूरत क्या है? दया धनिकों पर नहीं, बल्कि गरीबों पर की जाती है। महर्षि ने कहा था कि धनी को देखकर प्रसन्न होना, दु:खी को देखकर दया करना अर्थात् दया दुखियों से जुड़ी है, धनी दया का पात्र नहीं है। अगर वह सही तरीके से धन कमाता है, तो सम्मान का पात्र अवश्य है, लेकिन उससे ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। किसान और मजदूर ये दो आज संसार में सबसे ज्यादा दु:खी दिखाई देते हैं।

जरा सोचिये! एक कम्पनी का मालिक अपने यहाँ जो कर्मचारी रखता है, उनको कितना वेतन देता है? उसकी हर समय व्यापारिक बुद्धि रहती है, जिसके कारण मानवता नष्ट हो रही है। वह सोचता है कि कम से कम वेतन में, अधिक से अधिक काम कैसे लिया जाए। ऐसी भावना होगी, तो गरीबों का शोषण होगा, दया बिल्कुल नहीं रहेगी। जितना वह गरीब को वेतन देता है, उतना तो उस धनी के बच्चे एक दिन में जेब-खर्च कर देते हैं। अरबपतियों के यहाँ व्यञ्जन खाने की अपेक्षा, मुझे गाँव में किसी किसान के यहाँ पेड़ के नीचे बैठकर, थाली में सामान्य रोटी खाना, ज्यादा अच्छा लगता है। क्योंकि उसमें विचार आता है कि पता नहीं उस व्यापारी ने यह धन कैसे कमाया होगा, लेकिन किसान या मजदूर के यहाँ खाने में ऐसा कोई विचार नहीं आता, अपितु यह विचार आता कि कितना परिश्रम करके यह हमें खिला रहा है।

एक बार मैं जलपाईगुड़ी गया। वहाँ मेरा दस दिन का कार्यक्रम था। शायद 2002-03 की बात होगी। अन्तिम दिन जब सब दक्षिणा देने लगे, तो कोई 500 दे रहा था, कोई 200, तो कोई 100 रुपये। वहाँ एक बुढ़िया महिला, बहुत गरीब परिवार से आती थी। उनको कोई आहुति नहीं देने देता था, मैं कहता था कि माताजी को आगे आने दो। जब वे दक्षिणा लेकर आई, तो उन्होंने अपनी साड़ी के कोने से पाँच का नोट कसकर बांध रखा था, ताकि गिर न जाए और ऐसा बांध रखा था कि वह फट गया था। जब उन्होंने वह नोट मुझे दिया, तो मैंने उस बुढ़िया माता में अपनी माँ के दर्शन किए और मैंने उनसे कहा कि आपकी ये दक्षिणा 500 से भी ज्यादा है। लेकिन समाज उनको दुत्कारता है और जो धनपतियों की महिलाएँ थीं, वे नहीं चाहती थी कि वह भी आहुति डाले। जिनके हाथों के परिश्रम से हम करोड़पति और अरबपति हुए व हो रहे हैं, उनके साथ हम कैसा अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं? मजदूर जब हड़ताल करते हैं, तब फैक्ट्री के मालिकों को पता चलता है कि मजदूर क्या होते हैं? उनके बच्चे भरपेट रोटी भी न खा सकें और धनपति के बच्चे न जाने क्या-क्या खाते हैं। यह धर्म के विरुद्ध है।

श्रीराम की पूजा करना, नारे लगाना और मन्दिर बनाना अलग है, लेकिन श्रीराम की भावना के अनुसार जीवन चलाना, बहुत कठिन है। जब महात्मा भरत

चित्रकूट आये थे, तो श्रीराम ने कहा था कि तुम अपने सेवकों को बिना खिलाए, सुस्वादु भोजन स्वयं तो नहीं कर लेते हो? इसका अर्थ सभी धनपतियों एवं श्रीराम के भक्तों को समझ लेना चाहिए। विश्व के कम्युनिस्ट देशों, पूंजीपतियों, साम्यवादियों या समाजवादियों में क्या कहीं ऐसी व्यवस्था है कि किसी का मजदूर अच्छा भोजन कर सकता हो? क्या मजदूरों को उचित वेतन मिलता है?

फिर से किसान के विषय पर आते है। किसान के परिवार को देखें, तो सारा परिवार पति, पत्नी, बच्चे एवं उनके माता-पिता आदि सब खेती में लगे रहते हैं। उनकी मजदूरी जोड़ें, तो क्या उनको अपनी मजदूरी मिल पाती है? चाहे फसल कितनी भी अच्छी हो लेकिन वर्तमान में जो अनाज का विक्रय मूल्य या समर्थन मूल्य है, उससे उनकी मजदूरी कभी नहीं मिलती। प्रधानमन्त्री जी ने कहा कि किसानों की आय डेढ़ गुनी करेंगे। बहुत अच्छी बात है, लेकिन क्या लागत की डेढ़ गुनी आय होगी? और क्या लागत में उस परिवार की मजदूरी भी जोड़ी जाएगी? एक व्यक्ति की मजदूरी 400 होती हैं। पत्नी को कुछ कम देते हैं, तो 300 मान लें और बच्चों की भी जोड़ लें, तो हजार रुपये प्रतिदिन की मजदूरी हो गई। जब तक फसल खेत में रहती है, तब तक वे सब लगे रहते हैं। क्या कोई सरकार इनकी मजदूरी दे सकती है? मजदूर तो मजदूरी लेकर जेब में रख लेगा, लेकिन किसान की फसल पर ओला गिर जाए, बाढ़ आ जाए या सूखा पड़ जाए, तो वह क्या खायेगा? कितनी सहायता मिलेगी सरकार से, कोई सोचने वाला नहीं है।

अब प्रश्न आएगा कि इतना धन कहाँ से आएगा? इसका उत्तर है कि जब समानता, समाजवाद की इतनी बातें करते हो, तो इन पूंजीपतियों से क्यों नहीं ले लेते। सरकार की बुलेट ट्रेन लाने की योजना है, जिसमें लाखों-करोड़ों खर्च होंगे। जरा सोचिये! इतने में किसानों का कितना भला हो सकता है? किसानों का समर्थन मूल्य भी वही लोग तय करते हैं, जिन्होंने खेत कभी देखा तक नहीं है और जिन्हें खेती की कोई जानकारी भी नहीं है। नेताओं को किसानों के घर जाकर रहना चाहिए। वे कभी जायेंगे, तो ऐसे फॉर्महाउस में जायेंगे, जो उन्होंने टैक्स बचाने के लिए बना रखे हैं। यदि जाना है, तो गरीब किसान के घर जाओ, छोटे किसान के घर जाओ और देखो वे क्या खाते हैं? क्या पहनते हैं? कितना काम करते हैं?

बीमार होने पर अपनी चिकित्सा करा सकते हैं या नहीं? वे अपने बच्चों को पढ़ा सकते हैं या नहीं? जब आप ये सब देखेंगे, तो दया आयेगी और तब नीतियाँ ठीक बनेंगी। बिना दया के बनाई गई नीतियाँ बेकार हैं।

हम यह तो कहते हैं कि जितने भिक्षुक घूमते हैं, उन पर प्रतिबंध लगाओ, कोई भीख न मांगे। परन्तु क्या हमारे पास उनके लिए कोई दूसरी व्यवस्था है? ये ठीक है कि बहुत से भिखारी फर्जी घूमते हैं या ठग होते हैं। लेकिन केवल इसी बहाने भिखारियों की उपेक्षा करना उचित नहीं है, क्योंकि हमारे देश में गरीबी भी है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि मुझे कभी भिक्षा माँगनी पड़े, तो मुझे भी लोग पाखण्डी कहेंगे, कोई रोटी भी नहीं देगा, क्योंकि भिखारियों के प्रति दृष्टिकोण बदल गया है। मैं मानता हूँ, उनमें बहुत सारे ठग होंगे, जो भिक्षा माँग कर शराब पीते होंगे या पैसे वाले कुछ ठग लोग बच्चों को पकड़ कर भिक्षा मँगवाते होंगे। परन्तु क्या कोई वास्तव में गरीब नहीं होगा? मैं नहीं मानता कि भारत में गरीबी नहीं है। कोई कहे कि उनको काम पर लगाओ, यदि मैं कहीं जा रहा हूँ, तो कहाँ से काम दे सकता हूँ? जो जेब में है, वही दे सकता हूँ। पूंजीपति व सरकारें काम दे सकती हैं, हर आदमी काम कैसे दे सकता है? यह कहना सरल है, किन्तु काम देने की योजना सरकार ही बना सकती है। कोई भिखारी पैसे मांग रहा हो, तो उसे खाना खिला दें, ये अच्छी बात है। किन्तु बीमार हो और बीमारी के इलाज के लिए पैसे माँग रहा हो, तो खाना खिलाकर क्या होगा? बहुत कुछ सोचना पड़ता है। अगर वह गलत कर रहा है, तो उसका फल भोगेगा, मैं ज्यादा उसकी छानबीन में क्यों जाऊँ? अगर हम महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए कहीं गए और रास्ते में कोई भिखारी मिल गया, तो हम यह छानबीन करें कि यह भिखारी कहाँ से आया, यह वास्तव में गरीब है या नाटक कर रहा है? क्या हम अपना काम छोड़कर उसके पीछे लग जायें? ऐसा नहीं होता। वह गलत करेगा, तो फल अपने आप भोगेगा। लेकिन दया करना, जो हमारा गुण है, वह कहाँ काम आयेगा? कहीं-कहीं तो उनको ऐसे दुत्कारते हैं, जैसे कोई पशु आ गया। क्यों? तुम गाड़ी में बैठे हो, तुम्हारे पास धन है, इसलिए दुत्कार रहे हो? वह गरीब व दु:खी है, इसलिए दुत्कार रहे हो? आस्तिकता का गुण कहाँ है? अगर हमारे पास संयोग से धन नहीं है, तो प्रेम से

समझाकर भी मना कर सकते हैं।

यदि संसार के सभी लोग इस दया गुण को अपना लें, तो दुनिया में शान्ति हो जायेगी। दयायुक्त व्यक्ति कभी आतंकवादी, ठग, कसाई, माँसाहारी, मछली और अण्डे खाने वाला नहीं बन सकता और वह किसी का शोषण नहीं कर सकता। जो भी धनसम्पन्न हैं, वे देखें कि उनके यहाँ काम करने वाले कर्मचारियों का जीवन स्तर क्या है और कैसा होना चाहिए? क्या उनकी सामान्य आवश्यकताएँ वेतन से पूर्ण हो रही हैं? ये सोचना चाहिए। नहीं तो, आपका भगवान् शिव के लिए पूजा-पाठ करना पाखण्ड है। दयाभाव होगा, तो पृथ्वी से पैन-वेव्स समाप्त हो जाएँगी, क्रोध एवं हिंसा की तरंगें समाप्त हो जाएँगी और पर्यावरण शुद्ध होता चला जाएगा। प्रेम और दया की तरंगें मिलकर ही सारे ब्रह्माण्ड को संतुलन में रख सकती हैं।

प्रश्न - मन में दया का भाव हर समय कैसे आए?

उत्तर - कल्पना करें, हमारे घर में कोई नौकर काम कर रहा है या कोई बुढ़िया नौकरानी का काम कर रही है, तो हमारे मन में यह भाव आवे कि ऐसे ही मेरी माँ नौकरानी होती, यदि उससे उसका मालिक ऐसा व्यवहार करता, जैसा मैं इसके साथ कर रहा हूँ, तो मुझे कैसा लगता? उस बुढ़िया नौकरानी में अपनी माँ को देखोगे, तो दया आयेगी। माँ को न भी देखो, परन्तु यह तो देखो कि यह भी परमपिता परमात्मा के परिवार की एक सदस्या है और मैं भी हूँ। इससे हमारा सम्बन्ध सबके प्रति समान होगा। किसी से भाई का, किसी से बहन का, तो किसी से माँ का होगा। ये सम्बन्ध होंगे, तो निश्चित रूप से दया आयेगी।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अर्थात् हम यह भी सोचें कि आज मैं जिस जानवर को मार रहा हूँ, कल ये जानवर मनुष्य बनेगा और मैं जानवर बनूँगा, फिर यह भी मुझे मारेगा, तब क्या होगा? अगर ईश्वर सब जगह अनुभव होता, तो हम ऐसा नहीं करते। ऋषि दयानन्द से जब अद्वैतवादी कहने लगे कि दयानन्द कहाँ घूमते हो, ये संसार मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है, उसी की उपासना करो, क्यों बखेड़े में पड़े हो? तब ऋषि दयानन्द ने

उनसे पूछा कि जिसकी तुम उपासना करते हो, वह ब्रह्म कहाँ रहता है? फिर वे बोले कि वह तो सबके हृदय में निवास करता है। पुन: ऋषि बोले कि जब वह ब्रह्म सबके हृदय में निवास करता है, तो क्या तुम्हें ध्यान है कि देश पराधीन है, स्त्रियों की क्या दशा है, शूद्र वर्ग की क्या दशा है? इस देश में कितनी निर्धनता आ चुकी है, कितने लोग दु:खी हैं, कितने लोग भूखे और नंगे हैं, क्या उनमें ब्रह्म नहीं है? आप कहते हैं कि ब्रह्म सब में है, तो इनकी चिन्ता कौन करेगा? इनके दु:ख दूर करने से ही मेरा मोक्ष हो जायेगा, क्योंकि ब्रह्म इन सबके अन्दर भी है। जब हम ब्रह्म को सबके अन्दर देखेंगे, तो निश्चित रूप से हमारे अन्दर दयाभाव आएगा।

हम कहने को तो कह देते हैं कि ईश्वर घट-घट वासी है, लेकिन यह व्यवहार में नहीं आता। आग से हाथ जलता है, लेकिन किसी दूसरे का जल जाए, तो खुश होते हैं। कोई रोड पर ठोकर लगकर गिर जाए, तो हंसी आती है और किसी अपने को लगे, तो रोना आता है। क्योंकि हमने सब में ब्रह्म को नहीं देखा, सब में जीवात्मा को नहीं देखा, जो हम सब में विद्यमान है। जब हम सब में ब्रह्म को देखेंगे और सबको ब्रह्म में देखेंगे, तो हम सबको परिवार का सदस्य समझेंगे और हमारे अन्दर **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की उदात्त भावना उत्पन्न हो जायेगी।

आज तो परिवार के सदस्यों पर भी दया नहीं है। अवैध-सम्बन्ध आदि के कारण पत्नी, पति को मार डालती है और पति, पत्नी को मार देता है। बच्चे, बाप को मार देते हैं और बाप, बेटों को मार देते हैं। दया तो वहाँ भी नहीं रही, क्योंकि वहाँ भी वे ब्रह्म को नहीं देखते। इन्द्रियों की लोलुपता में फँस जाते हैं, फिर ब्रह्म नहीं याद आता, हम मानते ही नहीं हैं। बस इतना मानते हैं कि मन्दिर में जाकर पूजा कर लेंगे, आर्यसमाजी हवन कर लेंगे। उसके पश्चात् 24 घण्टे बाद हवन (वैसे सब करते नहीं है) करते हैं एवं सायंकाल में संध्या भी करते हैं। मन्दिर में 'ओम् स्वाहा स्वाहा' होता है, वहाँ 'श्रीराम जय राम, जय-जय राम, ओम् नम: शिवाय' भी होता है, परन्तु 'ओम् नम: शिवाय' के बाद वैसा ही जीवन होता है, जैसा जो 'ओम् नम: शिवाय' नहीं बोलते, उनका जीवन होता है। वैसा ही होता है, जैसा नास्तिकों वा ठगों का जीवन होता है। सुबह दुकानदार दुकान खोलता है, अगरबत्ती जलाता है और फिर खूब आरतियाँ करता है। उसके बाद वही ठगी प्रारम्भ हो जाती

है। कहाँ गई ग्राहक के प्रति दया? कई तो कितना-2 प्रॉफिट लेते हैं, दया कहाँ है? यदि सब में ब्रह्म को मानें और सबको ब्रह्म में मानेंगे, तो हमारा सम्बन्ध वास्तव में परिवार जैसा हो जायेगा। आइए, हम सब पर दया करना सीखें। अगर ऐसा नहीं होगा, तो राक्षस बनेंगे। आज राक्षस ज्यादा बन रहे हैं, मनुष्य कम रह गए और देव तो रहे ही नहीं। इसलिए धर्म के तीसरे लक्षण को अपनाएँ व आस्तिक बनें, क्योंकि आस्तिक व्यक्ति ही तीसरे लक्षण 'दया' को अपना सकता है।

9. मन की चंचलता का कारण

भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के चौथे लक्षण पर विचार करते हैं-

धर्म का चौथा लक्षण है- शम। यहाँ 'शम' आया है, लेकिन दम नहीं है। दोनों एक ही शब्द से गृहीत हैं। 'शम' का अर्थ यह लिया जाता है कि मन-इन्द्रियों को वश में रखना। जब तक धर्म के पूर्वोक्त तीन लक्षण हमारे अन्दर नहीं आयेंगे, तब तक मन इन्द्रियों पर काबू नहीं हो सकता। जैसा कि पूर्व में बताया गया कि आत्मा रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और विषय मार्ग हैं। अगर इनमें आपस में तालमेल नहीं है, तो घोड़े (इन्द्रियाँ) अनियन्त्रित हो जायेंगे।

एक बार एक ऊँटसवार जा रहा था और उसके हाथ से नकेल छूट गई। ऊँट दौड़ा जा रहा था, यह देखकर किसी ने उस ऊँटसवार से पूछा कि कहाँ जा रहे हो? वह बोला- पता नहीं, ऊँट जहाँ ले जायेगा, वहीं चले जायेंगे, नकेल हमारे हाथ में नहीं है। आज संसार के लगभग सभी मनुष्य ऐसे ही दौड़ रहे हैं, जैसे उनकी नकेल उनके हाथ से छूट गई हो। कोई मनुष्य कब और क्या कर बैठे, कुछ नहीं कहा सकता। वह ऊँट सही रास्ते पर भी ले जा सकता है और गड्ढे में भी गिरा सकता है। वह खुद भी मर सकता है और हमें भी मार सकता है। सही रास्ते पर जाने की सम्भावना तो नगण्य है, क्योंकि पशु तो पशु है।

मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने के लिए पहले हमें मन को नियन्त्रित करना होगा। एक लोकप्रचलित कहावत है कि 'जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन'। आज हमारा अन्न प्रदूषित है। अन्न दो तरह से प्रदूषित होता है, एक तो उसमें कुछ गन्दगी आ जाने पर हमारे अन्न में कई तरह के विष हो सकते हैं, वे विष रासायनिक खाद वा कीटनाशक से आ सकते हैं, विषैले जल से सिंचाई करने से भी आ सकते हैं। दूसरा यदि वह अधर्म से कमाया हुआ हो। आज अन्न पूरी तरह प्रदूषित है, अधर्म से भी कमाया जा रहा है। जिसका जितना सामर्थ्य होता है, वह उतना अधर्म- चोरी, बेईमानी, रिश्वत लेने की कोशिश करता है। बड़ा आदमी, ज्यादा बड़ी और

छोटा आदमी, छोटी चोरी करता है। पहले चोर घरों में जाते थे, तो दीवार में छेद करके आटा, दाल, धन जो मिलता था, ले आते थे। लेकिन अब टेक्नोलॉजी का जमाना है, तो बैंकों से भी धन हर लेते हैं। पहले अपराधियों के पास लाठी, तलवार, भाला ही होता था। गाँव वाले उसे घेरकर मार भी सकते थे, क्योंकि उनके पास भी ये सब होते थे। लेकिन अब तो अपराधी अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर आते हैं। जिनको नियन्त्रण में करना पुलिस के लिए भी बहुत मुश्किल काम होता है। पहले पूरे गाँव को एक पुलिस वाला कंट्रोल कर लेता था। लेकिन अब तो कई ऐसे गाँव हैं कि वहाँ फोर्स आ जाये, तो उनको भी नहीं टिकने देते। यूपी, बिहार में ऐसे बहुत से गाँव हैं, राजस्थान में भी ऐसे कुछ लोग होंगे।

मनुष्य का मन प्रदूषित है, क्योंकि अन्न प्रदूषित है। एक व्यापारी व्यापार करता है, तो क्या वह यह सोचता है कि मुझे कितना लाभ लेना चाहिए? वह सोचता है कि मार्केट में क्या चल रहा है। मार्केट में सारे ठग बैठे हैं, तो मैं भी ठगी करूँ। जो ऐसा करेगा, क्या उसका धन शुद्ध होगा? हम दूसरों को देखकर जीते हैं, स्वयं को नहीं देखते, ईश्वर को और धर्म को भी नहीं देखते। जितने भी धनपति हैं, उनको आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि उनकी कमाई में अनैतिकता का भाग कितना है और नैतिकता का कितना? आपके मन में प्रश्न आ सकता है कि व्यापारी लाभ लेने के लिए बैठा है, तो लाभ लेगा ही, नहीं तो व्यापार क्यों करेगा? लेकिन उस लाभ की कुछ सीमा भी तो होती है। छोटी-छोटी दुकानों वाले बहुत पैसे वाले कैसे बन जाते हैं। इसका अर्थ है कि वे बहुत ज्यादा लूटते हैं और जहाँ बहुत ज्यादा लूट होती है, वहाँ आर्थिक विषमताएँ पनपती हैं और जहाँ आर्थिक विषमताएँ पनपती हैं, वहाँ नक्सलवाद और आतंकवाद बढ़ता है। पूर्वोत्तर के राज्यों में नक्सलवाद व आतंकवाद के बढ़ने का यह बहुत बड़ा कारण है। ऐसा हमारी संस्थान के सचिव डामोर साहब ने बताया था, क्योंकि वे अगरतला, त्रिपुरा में फोर्स में रह चुके हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि अन्न प्रदूषित है, क्योंकि अधर्म से कमा रहे हैं। कोई यह नहीं सोचता कि बहुत धन हो जाए, तो उससे क्या होगा? खायेगा तो रोटी ही न, कोई सोना, हीरा, चाँदी तो खायेगा नहीं। रोटी के लिए इस दुनिया में कितना ताण्डव मचा रखा है। सोयेगा तो एक चारपाई पर ही, किन्तु मकान इतने बड़े

बनवाते हैं कि झाड़ू भी न लग पाए। उन सबने गरीबों के भाग्य दबा रखे हैं। शोषण करके धन चाहिए। व्यक्ति शोषण इसलिए करता है, क्योंकि उसके अन्दर अहिंसा, सत्य और दया, ये तीनों गुण नहीं हैं। क्योंकि हमारा अन्न प्रदूषित है और ऊपर से उसमें जहर मिला है, इसलिए मन तो प्रदूषित होगा ही। मन को शुद्ध करने का सबसे बड़ा उपाय है- अन्न शुद्ध हो। अगर किसी के पास भूमि है, तो वह अपनी खेती करके शुद्ध अन्न उगाकर बच सकता है, नहीं तो प्रदूषित अन्न से बचना सम्भव नहीं है।

जिसका हमें पता लगता है कि इसका धन पाप का है, तो उसको हम दान में नहीं लेते। हमने अपनी वेबसाइट पर लिखा है और हर पुस्तक में लिखते हैं कि किन-किन लोगों का धन, हम नहीं लेते। हमारे यहाँ एस.डी.एम. साहब आए थे, तो हमने उनसे कहा कि देखिए हमारी यह शर्त होती है, तो उन्होंने कहा कि दान लेने की ऐसी शर्त, उन्होंने कहीं नहीं देखी। क्योंकि यदि अधर्म से कमाया हुआ धन हम लेंगे, तो हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी, हमारा मन खराब होगा। लेकिन लोगों को मन खराब करने में आनन्द आता है, क्योंकि मन खराब होता है, तो गलत-गलत सोचता है और उसमें वह सुख का अनुभव करता है।

सर्वप्रथम जो हमारा भोजन है, उसे जितना हो सके, सामर्थ्यानुसार शुद्ध लेने का प्रयास करना चाहिए। एक बार हम एक आर्यसमाज मन्दिर में गए। वहाँ एक प्याऊ थी, जिससे मैं पानी पीने लगा। उस पर बनवाने वाले का नाम लिखा था, किसी से पूछा, तो पता चला कि एक माँस विक्रेता ने बनवाई है। मुझे याद है, उसके बाद मैंने उस प्याऊ का पानी नहीं पीया। किसी माँस विक्रेता ने कहा कि मैं यहाँ प्याऊ बनवा दूँ और हमने स्वीकार कर लिया, क्योंकि हम लेने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। माँस विक्रेता के पैसे से पानी पीकर या किसी पापी के पैसे से कॉलेज, गुरुकुल खोलकर या मन्दिर बनवाकर क्या हम धर्मात्मा बन जायेंगे ?

मैं अपने घर की ही बात करूँ, तो मैं एक बार अपने घर गया। मैं वहाँ कुछ स्वादवश कुछ खाता नहीं था, ऐसे ही सामान्य भोजन करता था, कभी तो पीपल और बड़ के पत्ते ही उबालकर उससे रोटी खा लेता था। मुझे किसी ने सिखाया

नहीं, मैंने स्वयं ही कुछ पुस्तकें पढ़कर नवम्बर 1981 से मसाले आदि खाने छोड़ दिये थे। माताजी रो कर बोली कि हम क्या खिलाएँ, कुछ खाते तो हो नहीं, तो मैंने कहा कि खीर बना लो, खा लेंगे। थाली में खीर रखी, खाना रखा और लाइट जलाई। उन दिनों नई-नई लाइट आई थी, गाँव में आए हुए ज्यादा दिन नहीं हुए थे। खम्भा थोड़ी दूर था, तो मैंने पिताजी से पूछा कि ये लाइट का कनेक्शन कब लिया? तो उन्होंने कहा कि ऐसे ही तार डाल लिया है। मैंने उसी क्षण थाली छोड़ दी कि जिस घर में चोरी होती हो, मैं वहाँ भोजन नहीं करूँगा। सोचिए! मेरी माता जी पर क्या बीती होगी, जिन्होंने रो कर तो कुछ बनाया था और वो भी मैंने छोड़ दिया। बाहर आया और चाचा जी के घर चला गया। वहाँ भी खीर बनी थी, तो हमारी भाभी जी बोलीं कि महात्मा जी! खाना खा लो, मेरे अनुकूल था, तो मैंने कहा ले आइए। हमारे भाई साहब बोले कि जरूर कुछ गड़बड़ है, ये ऐसे खाने के लिए हाँ नहीं कर सकते, तभी बीच वाला भाई आ गया कि चलिए भाई साहब! तार हटा दिया। मैंने कहा कि तार तो फिर डाल दिया जाएगा। फिर उनको संकल्प दिलाया कि बिना कनेक्शन लिए बिजली नहीं जलाऊँगा।

क्या कोई इतना ध्यान रखता है? आज कोई बिजली की, तो कोई पानी की चोरी करता है। ऐसे में हमारा मन शुद्ध रहेगा क्या? हमारा अपने मन पर नियन्त्रण रहेगा क्या? खाने के लिए भी राजसी और तामसी भोजन चाहिए, जैसे तेज मसाले, लहसुन, प्याज आदि। एक तो ये अशुद्ध हैं और फिर ऊपर से रजोगुणी तथा तमोगुणी। माँस, मदिरा की तो बात नहीं करेंगे, क्योंकि वह भोजन नहीं है, अपितु अभक्ष्य पदार्थ हैं। लहसुन व प्याज अभक्ष्य नहीं हैं, इनको खाना अधर्म नहीं है। लेकिन वह औषधि है, भोजन नहीं है और माँस तो औषधि भी नहीं है। कोई कितना ही कहे, तो भी नहीं लेना चाहिए। हम अपने स्वाद के लिए, किसी की जान नहीं ले सकते। खाने के लिए बहुत ज्यादा तमोगुणी एवं रजोगुणी चाहिए, फिर हमारा मन नियन्त्रण में कैसे रहेगा?

एक भंगेड़ी ऋषि दयानन्द के पास आया और बोला कि महाराज जी! मैं ध्यान में बैठता हूँ, तो ध्यान नहीं लगता। उन्हें पता नहीं था कि ये भांग पीता है, लेकिन चेहरे और हावभाव से पता चल गया। वे व्यंग्य में कहते हैं कि दो लोटा भांग

भवानी के और चढ़ा लिया करो, तो ध्यान लग जाएगा। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा, तब तक मन और इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण नहीं रहेगा, क्योंकि शुद्ध मन ही नियन्त्रित किया जा सकता है, अशुद्ध नहीं। स्वस्थ घोड़े को नियन्त्रित किया जा सकता है, लेकिन अगर उसको कोई घाव लगा हो या कोई शराब पिला दे, तो घोड़ा नियन्त्रण खो बैठेगा। घोड़े का स्वास्थ्य वैसे भी खराब है तथा शराब और पिला दें। यहाँ शराब का अर्थ उत्तेजक भोजन से है। भोजन के कई अर्थ हैं, उनकी चर्चा अगले दिनों में करेंगे।

10. बुराइयों से कैसे बचें?

पूर्व में हम भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के चौथे लक्षण 'शम' पर चर्चा कर रहे थे। अभी प्रिय विशाल आर्य ने प्रश्न पूछा था कि–

मनुष्य बुराई की तरफ जल्दी क्यों जाता है? अच्छाई की तरफ क्यों नहीं जाता?

यथार्थ में ऐसा ही होता है, क्योंकि पहाड़ पर चढ़ना कठिन होता है और गिरना बहुत सरल होता है। कोई एक धक्का मारने पर ही नीचे आ जाएगा और चढ़ने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। ऐसे ही जीवन में होता है। परन्तु इस उदाहरण में फिजिक्स वाले कह सकते हैं कि नीचे तो गुरुत्वाकर्षण बल खींचता है। गुरुत्वाकर्षण बल नहीं होता, तो नीचे भी नहीं गिरते। परन्तु यहाँ कौन सा बल है, जो हमें बुराई की तरफ खींचता है? इसका उत्तर है कि स्पेस में काम, क्रोध आदि बुराईयों की तरंगें अधिक हैं, वे तरंगें हमें अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करेंगी। जैसे–जैसे संस्कारों की बहुलता होगी, वैसे–वैसे संस्कार हम पर भी हावी होने का प्रयास करेंगे। जैसे होली पर बच्चे पिचकारी से खेलते हैं, कोई नहीं खेलता है, फिर भी वह भीगेगा ही। इत्र बेचने वाले के पास बैठ जाओ, तो सुगन्ध आएगी ही। हॉस्पिटल में घूम कर आओ, तो दवाइयों की दुर्गन्ध आएगी ही। सम्पूर्ण आकाश तत्त्व व मनस्तत्त्व प्रदूषित है। हम पर भी निर्भर करता है कि हम रात–दिन किसके साथ रहते हैं? आदर्श स्थिति तो यह है कि हमारे आसपास के सभी लोग सात्त्विक हों। पृथ्वीवासी क्या सोच रहे हैं, उनके कैसे संस्कार हैं, इनका भी हम पर प्रभाव पड़ेगा। चाहे कोई अमेरिका में हो या पाकिस्तान में या फिर कोई आतंकवादी हो, हिंसा की तरंगें पूरे ब्रह्माण्ड को प्रभावित करेंगी। क्योंकि इस धरती से उत्पन्न हो रही हैं, इसलिए हमें ज्यादा प्रभावित करेंगी।

महाभारत में भीष्म पितामह ने कहा है कि कुसंस्कारी की संगति न करें, सात्त्विक लोगों की संगति करें। ऋषि दयानन्द ने भी कहा कि माँसाहारियों के पास न बैठें, उनसे सम्पर्क न करें, नहीं तो यह दोष हममें भी आ जाएगा। यहाँ तो केवल माँसाहार के लिए कहा है, दूसरी भी कई बुराईयाँ हैं। उन बुराइयों से ग्रस्त व्यक्ति

से दूर रहना चाहिए, जिसके लिए भगवान् पतञ्जलि ने कहा कि उनकी उपेक्षा करो। हमारा रसोईया, सुरक्षाकर्मी, वाहनचालक आदि सब स्टाफ सात्त्विक होना चाहिए। ऐसी स्थिति तभी बनेगी, जब भोजन बनाने वाला सात्त्विक होगा। हालांकि हम स्पेस और मनस्तत्व से बुराईयों की तरंगें नहीं मिटा सकते, लेकिन अपना परिसर सात्त्विक होना चाहिए। बुराई हमें जल्दी खींचती है, क्योंकि सारा मनस्तत्त्व तामस और राजस भाव से ग्रस्त है, सात्त्विकता की कमी है। ऐसा कभी नहीं होता कि तमोगुण के बिना काम चल जाएगा। तमोगुण, रजोगुण व सत्त्वगुण आवश्यक है, लेकिन प्रधानता सत्त्वगुण की होनी चाहिए। तमोगुण नहीं होगा, तो हमको नींद ही नहीं आएगी। रजोगुण नहीं होगा, तो काम ही नहीं कर पायेंगे और सत्त्वगुण नहीं होगा, तो ज्ञान का प्रकाश नहीं होगा, सुख और आनन्द नहीं होगा।

सुख की परिभाषा लोग गलत करते हैं कि इन्द्रिय-सुख। निरुक्त में सुख का निर्वचन किया गया है - **सुहितं खेभ्य इति सुखम्** अर्थात् जो हमारी इन्द्रियों के लिए अच्छा हो, उन्हें अच्छी तरह धारण व पुष्ट करता हो, वही सुख है। ऐसी परिभाषा और कहीं नहीं मिलेगी। जिसको देखकर आँख स्वस्थ रहे, अधिक दिनों तक देख सके, वह आँख का सुख है। रंग-बिरंगी वीडियो देखने से हमारी आँख ज्यादा दिन तक नहीं चलेगी, इसलिए यह आँख का सुख नहीं है, मात्र हमें प्रतीत होता है। जैसे हित और रुचि में अन्तर है, वैसे ही सुख और रुचि में भी अन्तर है। जिन विचारों से मन का अच्छी तरह धारण-पोषण होता हो, वह मन का सुख है। जिसको सुनने से कान बहुत आयु तक सुनते रहें, वह कान का सुख है। जिस स्वाद को लेकर हमारी रसना बहुत दिन तक स्वाद ले सके और स्वस्थ रह सके, वह जीभ का सुख है। ऐसे सुख को आज कोई नहीं लेना चाहता। ऐसे को सुख मानते हैं, जो उत्तेजक हो, उस समय बस अच्छा लगता हो। इस प्रकार सब तरफ बुराईयाँ फैली हुई हैं।

गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि भोजन तीन प्रकार का होता है- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। देशी गाय का उत्पाद दूध, दही, घी, मक्खन, छाछ आदि और चावल, मूंग, फल, लौकी आदि सुपाच्य सब्जियाँ सतोगुणी हैं। इनको भी उर्वरक आदि डालकर रजोगुणी, तमोगुणी, विषैला बना दिया है। परन्तु

जितना हो सके, सतोगुणी भोजन करना चाहिए। मिर्च, मसाले, नमकीन, चटपटा आदि ये सब रजोगुणी हैं। मीठा सतोगुणी में आता है, लेकिन चीनी आदि नहीं। वास्तविक मीठा तो गुड़, शहद, फल आदि में है। बासी भोजन, लहसुन, प्याज, भैंस के उत्पाद जैसे दूध, दही, घी, ये सब तमोगुणी भोजन हैं। भैंस का दूध बल बढ़ाने वाला है, परन्तु इससे आलस्य भी बहुत आता है। ये भी देखें कि गाय और भैंस में कौन ज्यादा बीमार पड़ती है? जो गाय व भैंस दोनों को पालते हैं, उनको मालूम होगा। मुझे अनुभव है, क्योंकि मैं इस विभाग में रहा। भैंसे ज्यादा बीमार पड़ती हैं और भैंस में बुद्धि भी नहीं होती। जिधर मुँह उठाएगी, उधर चल देगी, लेकिन गाय ऐसा नहीं करती। भैंस का दूध, दही, घी खाकर हमारी बुद्धि भी वैसी हो जायेगी। जिसका दूध पियेंगे, उसके संस्कार तो पड़ेंगे ही, माँ के संस्कार इसलिए पड़ते हैं, क्योंकि हमने माँ का दूध पीया है। भैंस का दूध पीने से इतने संस्कार तो आयेंगे ही कि हम बुद्धिहीन और आलसी हो जायेंगे। भैंस में बल भले ही ज्यादा हो, लेकिन प्रतिरोधक क्षमता गाय और बैल में ज्यादा होती है। जैसे गाय अकाल में भूखी-प्यासी घूमती है, वैसे भैंस घूमे, तो मर जायेगी। विदेशी और संकर गाय भी भैंस की तरह बीमारी की जड़ हैं। उनके दूध में तो कैंसरकारक पदार्थ भी पाया जाता है, भैंस के दूध में कैंसरकारक जैसा कुछ नहीं होता। भैंस का दूध त्याज्य वा विष नहीं है, लेकिन विदेशी गाय का दूध विष है। भैंस का दूध तमोगुणी, कामोत्तेजक, रोगवर्धक व आलस्य बढ़ाने वाला है, परन्तु बल बढ़ाने वाला है। लेकिन विदेशी गाय का दूध कैंसरकारक है।

तमोगुणी भोजन से बचें, इससे आलस्य बहुत आता है। कई ऐसे भी लोग होते हैं, जो सारे दिन सोते ही रहेंगे। नींद नहीं आएगी, तो ऐसे ही पड़े रहेंगे, उठने का मन कम करेगा। कुछ न कुछ बहाना करेंगे, क्योंकि तमोगुण ज्यादा है। रजोगुण वालों में चंचलता ही भरी होती है, किसी की बात नहीं सुनते, बस बोलते रहते हैं। तोड़फोड़ करते रहते हैं, उन्हें कुछ न कुछ अवश्य करना है। सत्त्वगुण वाले शान्त प्रकृति के होते हैं, रजोगुणी क्रोधी होते हैं और तमोगुणी मोही होते हैं, मोही अर्थात् उन्हें सही-गलत कुछ नहीं सूझता। इस कारण यथासम्भव सात्त्विक आहार लेना चाहिए, ऐसा नहीं है कि सात्त्विक भोजन से सक्रियता नहीं रहेगी, क्योंकि उसमें

रजोगुण भी साथ में विद्यमान है। ऐसा भी नहीं है कि सतोगुणी भोजन करने से नींद नहीं आएगी, क्योंकि उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है, लेकिन उसमें तमोगुण भी हैं। तीनों गुणों के बिना तो सृष्टि बनेगी ही नहीं। संसार का कोई भी उत्पन्न पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण नहीं है। परन्तु सत्त्वगुण ज्यादा होगा, तो वह हमारे लिए कल्याणकारी होगा और तमोगुण ज्यादा होगा, तो हमारे लिए दुःखकारी होगा।

एक बार मैंने बी.बी.सी. पर सुना कि 14 बच्चों पर एक प्रयोग हुआ। जिसमें कुछ बच्चों को एक हॉल में आधे घण्टे के लिए शान्त बैठाया गया और दूसरे वर्ग के बच्चों को ऐसे स्थान पर बैठाया गया, जहाँ पर खटपट-खटपट आवाज हो रही थी और तीसरे वर्ग के बच्चों को ऐसे स्थान पर, जहाँ मधुर और शान्त संगीत बज रहा था। उस प्रयोग में पाया कि जो बच्चे खटपट-खटपट में बैठे थे, आधे घण्टे में ही उनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता 20 प्रतिशत कम हो गई और जो शान्त कमरे में बैठे थे, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और जिन्होंने शान्त मधुर संगीत सुना, उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता में 14 प्रतिशत वृद्धि हुई। अब विचार करें, मधुर और शान्त संगीत केवल भक्तिरस का हो सकता है और कोई नहीं। यदि कोई होगा, तो उसमें उत्तेजना होगी, चाहे वह उत्तेजना अच्छी हो, जैसे वीर रस में भी उत्तेजना होती है, उसमें अच्छी उत्तेजना होती है कि दुष्टों को मारो, यह उत्तेजना सात्विक होती है, इस कारण यह तो अच्छी है। वैसे आजकल के गाने और अधिक खतरनाक हैं। हम कान के आहार की बात कर रहे थे। ध्वनि तरंगें कान का आहार हैं। कान से जैसा सुनेंगे, वह मस्तिष्क पर प्रभाव डालेगा और जैसा मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ेगा, वैसा ही प्रभाव मन पर भी पड़ेगा। मन को नियन्त्रित करने का मार्ग सब इन्द्रियाँ हैं। दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। जैसे स्वाद के चक्कर में आहार गलत लेंगे, तो मन दूषित होगा और मन दूषित होगा, तो गलत आहार लेने की इच्छा होगी। कई तो ऐसे होते हैं कि थोड़ा सा नमक कम हो जाए, तो थाली फेंक देते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें तमोगुण और रजोगुण दोनों ही अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। संसार में ज्यादातर ऐसे ही लोग हैं, तो क्या हम उनसे प्रभावित नहीं होंगे?

इसका उपाय कुछ इस प्रकार है कि पहले देखें, क्योंकि देखना भी आँख का

आहार है। फिर विचारें कि मोबाइल, कम्प्यूटर आदि में हम क्या देख रहे हैं? यह देखने योग्य है भी या नहीं? कान में इयरफोन लगाकर क्या सुन रहे हैं, सुनने योग्य है भी वा नहीं? ऐसे ही प्रत्येक इन्द्रिय का आहार देखें, क्योंकि हमें इनको शुद्ध और नियन्त्रित करना है। इनको शुद्ध तो हमें ही करना है, लेकिन आकाशमण्डल में जो दूसरे लोगों के विचार हैं, उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है। केवल एक ही उपाय है, वह है साधना। जैसे वर्षा से बचने के लिए छाता, रेनकोट आदि जरूरी है, वैसे ही आकाशमण्डल की इन तरंगों से बचने के लिए साधना आवश्यक है। संध्या का अर्थ केवल यही नहीं है कि सुबह-शाम बैठकर संध्या के मन्त्रों का पाठ कर लें, बल्कि यह है कि उसके मन्त्रों के भाव हमारे जीवन में हर समय रहें।

भगवान् श्रीराम के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने कहा है- 'समाधिमान्' अर्थात् प्रतिक्षण समाधिमान् रहते थे और समाधि में ही सारा कार्य करते थे अर्थात् उनके पास ऐसा रेनकोट था, जिससे कोई बाहरी विचार उन्हें छू भी नहीं सकता था। हर समय ईश्वर को साक्षी मानकर ही कार्य करते थे। ईश्वर के साक्षी में कोई गलत कार्य नहीं करता और पुण्य ही पुण्य करता है। ऐसे ही कृष्ण भगवान् भी थे, जिनका विशेषण ही योगेश्वर था। हम सुबह-शाम संध्या करते हैं, लेकिन वह अभ्यास के लिए है और उस अभ्यास से हमें अपने जीवन को बदलना है। जब कोई गलत विचार आवे, तो ईश्वर याद आना चाहिए, इससे वह गलत विचार रुक जाएगा और अच्छे विचार आयेंगे। जैसे ऋषियों ने आकाश से छन्द रश्मियों को सत्तू के समान छान-छान कर ग्रहण किया, ऐसे ही हम भी छान-छान कर अच्छे विचारों को ग्रहण करें, अगर न कर पाएँ, तो भी कोई बात नहीं, लेकिन बुरे विचार नहीं आने चाहिए। प्रातः-सायं ईश्वर का स्मरण करना आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि दिन में हर समय ईश्वर को याद कर लिया, तो संध्या की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मधुर संगीत स्वयं में बहुत अच्छा है, केवल भक्ति संगीत ही मधुर और शान्त हो सकता है, मधुर तो श्रृंगार रस भी हो सकता है, लेकिन शान्त नहीं हो सकता। इसलिए ऐसा संगीत सुनाया गया था, जो मधुर हो और शान्त भी हो।

मैं पहले वह खाता था, जो नहीं खाना चाहिए, जैसे स्वादिष्ट मसालेदार सब्जियाँ, मिठाईयाँ, नमकीन आदि, लेकिन पालक की सब्जी, लौकी बन जाती थी,

तो देखकर रोता था, यह खराब आदत थी। मेरा अनुभव है कि जब तक मैंने ऐसा खानपान किया, तब तक बहुत बीमार रहा। जब से मैंने स्वामी ओमानन्द सरस्वती की 'ब्रह्मचर्य के साधन' पुस्तक पढ़ी, तब से स्वयं को एकदम बदल दिया। किसी ने ऐसा करने के लिए नहीं कहा था। पुस्तक पढ़कर ऐसा लगा कि मुझे जो नहीं खाना चाहिए, वह खाता था और जो खाना चाहिए, वह नहीं खाता था। मैंने एकदम से परिवर्तन कर दिया। कुछ लोग ऐसे कहते हैं कि धीरे-धीरे बदल लेंगे, धीरे-धीरे वाले कभी नहीं बदलते। जितने भी महापुरुष हुए हैं, सबका जीवन एकदम बदला है, अगर उनका जीवन बुरा रहा है तो। चाहे स्वामी श्रद्धानन्द को देख लें, जो पहले माँसाहारी थे, ऋषि दयानन्द को देख लें, जो पहले मूर्तिपूजा करते थे। कोई सोचेगा कि शराब धीरे-धीरे छोड़ दूँगा, तो वह कभी नहीं छोड़ेगा। वह सोचेगा कि एक बोतल रखी है, इसे पी लूँ और पी लेगा। फिर किसी पार्टी में जाएगा, तो वहाँ सोचेगा कि यहाँ पी लूँ, लेकिन खरीद कर नहीं पीयूँगा। एक आर्यसमाज में नाई था, वह बीड़ी खरीदकर नहीं पीता था, लेकिन फ्री में कोई पिलाए, तो छोड़ता भी नहीं था, तुरन्त ले लेता था। ऐसे लोग कभी नहीं सुधरते। मन को नियन्त्रित करना साधारण कार्य नहीं है, इसलिए गीता में अर्जुन भी कहते हैं कि मन बहुत चंचल है। चंचलता को रोकने का उपाय है- ध्यान, अच्छे ग्रन्थों का पठन-पाठन, सात्त्विक भोजन व सात्त्विक लोगों की संगति।

11. इन्द्रियों पर शासन कैसे करें?

जो हमसे ईर्ष्या करते हैं, उनके साथ हम क्या करें? क्या हम उनसे प्रेम करें?

जो हमसे प्रेम करता है, उससे हम प्रेम करेंगे। यह तो स्वाभाविक बात है और व्यापार की बात है। आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त से कहते हैं कि जो तुम्हें नेता मानते हैं, उनको साथ लेकर चलना सामान्य बात है, किन्तु जो तुम्हें नेता ही नहीं मानते, उन्हें साथ लेकर चलना बड़ी बात है। चन्द्रगुप्त इसमें सफल भी हुए। संध्या में हम कहते हैं कि हे परमात्मा! जो हमसे द्वेष करते हैं, उनको हम तेरी न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं। उन द्वेषों को खत्म कर दो। साथ में यह भी कहा कि जिनसे हम द्वेष करते हैं, उस द्वेष को भी समाप्त कर दो।

ऋषि दयानन्द से बहुत से लोग द्वेष करते थे, एक साधु रोज उनको उनके डेरे के सामने खराब-खराब गाली देकर गंगा स्नान के लिए जाता था। ऋषि दयानन्द सुनकर मुस्कुराते थे, कुछ कहते नहीं थे। उनके पास कोई फल या मिठाई लाता था, तो वे खाते नहीं, बल्कि बांट देते थे। एक दिन टोकरी भरकर फल बच गए, तो वे अपने सेवकों से बोले कि उस साधु को देकर आ जाओ। सेवक बोले कि महाराज वह आपको गाली देता है, तो महर्षि बोले कोई बात नहीं, वह गाली देता है, पर मैं लेता ही नहीं। उनका सेवक फल लेकर साधु के पास गया और बोला कि महाराज ने भिजवाए हैं। तो उसने पूछा- कौन स्वामी? सेवक ने उत्तर दिया- स्वामी दयानन्द सरस्वती। वह साधु बोला- तुमने गलत सुना होगा, क्योंकि मैं तो रोज उसको गाली देता हूँ। सेवक बोला नहीं-नहीं, उन्होंने आपके लिए ही भिजवाए हैं, उन्होंने कहा है कि जो साधु गाली देते हैं, उन्हें देकर आओ। साधु ने कहा- नहीं, तुमसे भूल हुई है, तो सेवक बोला नहीं-नहीं, बिल्कुल भी भूल नहीं हुई है। फिर क्या था, साधु दौड़ा-दौड़ा आया और ऋषि दयानन्द के चरणों में गिर गया और बोला 'महाराज जी! मैं आपको रोज गाली देता हूँ और आप मुझे फल खिला रहे हैं?' तो ऋषि ने उत्तर दिया कि तुम्हारी गाली मैं लेता ही नहीं हूँ।

अब प्रश्न यह है कि जो हमसे ईर्ष्या करते हैं, यदि हम भी उनसे ईर्ष्या करने

लग जाएँ, तो हमें क्या मिलेगा? वो ईर्ष्या की तरंगें छोड़ रहे हैं और हम भी छोड़ने लग जाएँ, तो इससे मनस्तत्व और ज्यादा खराब होगा। जो ईर्ष्या में अन्धा होकर हमारा अनिष्ट कर रहा हो और प्राणघातक बन गया हो, उसे मृत्युदण्ड भी दिया जा सकत है। जैसे महाभारत में दुर्योधन हो गया था। दुर्योधन कहता था कि–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, लेकिन मेरी इसमें प्रवृत्ति नहीं है और अधर्म को भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दुर्योधन को खजाने का काम सौंपा गया था कि कोई उपहार लाए, तो दुर्योधन उसे स्वीकार करेगा। जैसे-जैसे उपहार आते गए, वैसे-वैसे दुर्योधन की बीमारी बढ़ती गई कि इतना अधिक धन आ गया। अब वह शकुनि से कह रहा है कि मैं आग में जलकर मर जाऊँ या समुद्र में डूबकर मर जाऊँ या हलाहल विष पी लूँ? क्योंकि मुझसे अब जिया नहीं जाता। तो शकुनि पूछता है, तुम्हें क्या हुआ है? दुर्योधन बोलता है कि कुछ नहीं हुआ, बस मुझसे युधिष्ठिर का यश देखा नहीं जाता, यही ईर्ष्या है।

मैं अपनी बताऊँ तो, नौवीं कक्षा में हमारे छः-सात सेक्शन थे। मैं अपने सेक्शन में सबसे आगे रहता था और एक छात्र सभी सेक्शन में आगे रहता था। उसका नाम रामावतार गुप्ता था। मैं यह तो सोचता था कि मेरे में ऐसी क्या कमी है और इसमें ऐसी क्या विशेषता है कि जिससे यह मुझसे आगे है, लेकिन मैंने कभी किसी से ईर्ष्या नहीं की। क्लास में उसने भी साइंस विषय लिया और मैंने भी। हम दोनों एक ही सेक्शन में आ गए। अब मैं देखना चाह रहा था कि यह ज्यादा अंक कैसे लाता है? तो पता चला कि वह योजना से पढ़ता था और कहीं-कहीं नकल भी कर लेता था, जबकि मैं बिना योजना के पढ़ता था। वह पाठ्यक्रम से पढ़ता और मैं सिलेबस से बहुत बाहर का भी पढ़ता था, क्योंकि मैं वैज्ञानिक बनने के सपने देखता था। मैंने उसकी कमजोरी देखी कि एक तो यह पाठ्यक्रम से अलग नहीं पढ़ता है और दूसरा नकल भी कर लेता है। जब मैंने उसकी कमजोरी देखी, तो सोचा कि यह कोई बड़ी बात नहीं है। अगर वह मुझसे ज्यादा होशियार होता, तो मैं उससे भी सीखने का प्रयास करता। मैं उससे ईर्ष्या नहीं करता था, लेकिन

वह मुझसे ईर्ष्या जरूर करता था, क्योंकि कक्षा में अध्यापक कुछ पढ़ाते और पूछते तो मैं आगे रहता था, लेकिन अंकों में नहीं। जब वह गणित या कोई अन्य विषय पढ़ रहा होता और मैं वहाँ पहुँच जाता, तो वह पढ़ाई बन्द कर देता था, क्योंकि उसे ऐसा लगता था कि कहीं मैं उसकी गलती न देख लूँ। एक बार वह गणित का कोई प्रश्न हल कर रहा था, तो मैं वहाँ पहुँच गया, उसने कॉपी बन्द कर दी। एक लड़का बोला कि तुमने कॉपी क्यों बन्द कर दी? तुम तो बहुत होशियार बनते थे न? तो वह शर्मिन्दा हो गया। मैंने उस लड़के से कहा कि रामावतार तुमसे तो होशियार है न? उस लड़के ने कहा- हाँ। मैंने उसे कहा कि अपने से होशियार का सम्मान करना सीखो। यह मुझसे ईर्ष्या करता है, यह उसका विषय है, जब मुझे बुरा नहीं लगता, तो तुम्हें बुरा क्यों लग रहा है? मुझे नहीं पता कि रामावतार बदला या नहीं बदला, पर उस लड़के पर अवश्य प्रभाव पड़ा और वह शान्त हो गया। मैं भी ईर्ष्या करता, तो मुझे क्या मिलता?

ईर्ष्या करने वाला स्वयं जलता और परेशान होता है। ईर्ष्या करते रहो कि अम्बानी के पास इतना धन है, अडानी के पास इतना धन है, तो क्या हम मर जाएँ कि हमारे पास इतना धन नहीं है? हम अपना पुरुषार्थ करते रहें। ईर्ष्यालु व्यक्ति को दण्ड तभी देना चाहिए, जब वह हमारा अनिष्ट कर रहा हो या प्राणघातक बन रहा हो। उससे ईर्ष्या मत करो, बल्कि दण्ड दो। वह दण्ड कुछ भी हो सकता है। दुष्ट को दण्ड देना अहिंसा है। यह भी प्रीति का एक भाग है, क्योंकि जब तक दण्ड नहीं देंगे, तब तक वह सुधरेगा नहीं और जब तक सुधरेगा नहीं, तब तक न जाने कितनों की हानि करेगा। इसलिए सर्वहित में दण्ड देना अनिवार्य है। आज समाज में दण्ड देने योग्य तो बहुत हैं, परन्तु आज लोकतन्त्र है, आत्मरक्षा के लिए हथियार उठाना भी कई प्रश्नों का कारण बन जाता है। धर्म यह कहता है कि ईर्ष्या करने वाले से ईर्ष्या मत करो, उससे प्रेम करो। किन्तु जब उसकी ईर्ष्या हमारा अनिष्ट करने लग जाए, तो अवश्य दण्ड देना चाहिए। वहाँ अन्याय को सहन नहीं करना चाहिए।

दूसरा प्रश्न यह था कि मनस्तत्त्व में हिंसा, द्वेष, काम, ईर्ष्या आदि की तरंगें भरी हुई हैं, तो नवजात शिशु पर भी उन तरंगों का प्रभाव पड़ेगा, परन्तु इसमें उसका क्या दोष है? उसका इस समय भले ही दोष न हो, लेकिन पूर्व जन्मों का फल है।

इस समय धरती पर जो भी जन्म ले रहे हैं, यह उनके पापकर्मों का ही फल है कि ऐसे माहौल में पैदा हो रहे हैं। यह लोक हमारे रहने लायक ही नहीं रहा, इतने दुष्ट बढ़ गए हैं कि न तो हम उन्हें नष्ट कर सकते हैं और न ही कहीं दूसरी जगह जाकर रह सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने यही तो कहा था कि कोई बालक मजदूर के यहाँ जन्म लेता है, कोई बालक विद्वान् के यहाँ जन्म लेता है, तो कोई बालक धनवान् के यहाँ जन्म लेता है। सबके अपने-अपने पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है। किन्तु इस जन्म में कुछ होता है, तो उसके लिए समाज व राजव्यवस्था दोषी है। बच्चा अपने माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि सभी के संस्कार लेकर आता है, तो उसको उसके कर्मानुसार ऐसे परिजन मिले और ऐसा संसार मिला। अब उस बच्चे का क्या दोष, कर्तव्य तो माता-पिता का ही था कि जिस समय वह गर्भ में था, उस समय माता को अच्छे विचार रखने चाहिए थे। माता-पिता को धार्मिक एवं आध्यात्मिक होना चाहिए था। उनका खानपान बहुत सात्त्विक होना चाहिए था। पहले तो बच्चे को कुछ भी खिलायेंगे-पिलायेंगे और जब वह बड़ा हो जाएगा, तो कहेंगे कि हमारा बालक बिगड़ गया है, गाली देता है। जब वह गर्भ में था, तब वे भी गाली दे देते थे और उस समय वह भी सुन रहा था। अभिमन्यु भी तो गर्भ में ही सुन रहे थे, तभी तो चक्रव्यूह में घुस गए। इसलिए जब बच्चा गर्भ में हो, उस समय माता को सावधानी से अन्न खाना चाहिए और सावधानी से ही सब काम करने चाहिए।

माँ-बाप अच्छे संस्कार नहीं दे सके, लेकिन अगर बच्चे में कुछ पूर्व के संस्कार होंगे, वह साधना और स्वाध्याय करेगा, तो बड़ा होकर ऐसा आवरण बना लेगा कि उस पर हिंसा, द्वेष, काम, ईर्ष्या आदि की तरंगों का कोई असर नहीं पड़ेगा। रावण और विभीषण दोनों ही विश्रवा मुनि के पुत्र थे, लेकिन दोनों में कितना अन्तर था। दुर्योधन और दु:शासन जहाँ धृतराष्ट्र के पुत्र थे, वहीं विकर्ण भी उनका पुत्र था, जिसने भरी सभा में चीरहरण का विरोध किया था। वह युयुत्सु भी था, जो युद्ध में पाण्डवों की ओर आ गया था।

यदि बच्चे ने गरीबी, अज्ञानता, गलत कर्म देखे, तो उसमें उनके भी संस्कार हैं। छोटे बच्चों को बड़े ध्यान से सुधारना चाहिए। यदि वे सुधर गए, तो आगे फिर

बिगाड़ आना मुश्किल है, लेकिन छोटे बच्चों को मोबाइल पकड़ा दिया या टी.वी. दिखाने लगे, जो न दिखाने योग्य है, तो वह बिगड़ेगा ही।

हम भोजन के विषय में बात कर रहे थे। स्वाद कलिकाएँ, जिह्वा के 4-5 अंगुल में ही होती हैं। आगे मीठे की होती है, दाएँ-बाएँ नमकीन व तीखे की और गले में कड़वे की होती हैं। कड़वा तो कोई नहीं खाना चाहता, क्योंकि कड़वा बहुत देर तक लगता है। मीठा खाकर स्वाद थोड़ी देर में बन्द हो जाता है, अच्छी बात है कि मीठा स्वाद थोड़ी देर में ही बन्द हो जाता है, नहीं तो आदमी और ज्यादा खाता। मीठा खाकर गला घंटे भर मीठा रहे, तो मनुष्य और भी ज्यादा मीठा खाएगा। इसलिए परमात्मा ने बहुत सोच समझकर जिह्वा की संरचना की है। मीठा, तीखा, नमकीन, खट्टा ये थोड़ी देर का स्वाद होता है। लेकिन नीम के पत्ते खाने से गले में कितनी देर तक कड़वापन रहता है, क्योंकि परमात्मा भी जानता है, कोई कड़वा खाएगा ही नहीं। इस तीन-चार अंगुल की जिह्वा को तृप्त करने के लिए 33 फीट की आंतों को दु:ख दिया जाता है। भोजन उदर में डाल दिया जाता है, वहाँ क्या होता है, यह भगवान् जाने। जिनकी पाचनशक्ति अच्छी है, वे खाएँ, तो कोई बात नहीं। लेकिन जिनकी पाचनशक्ति अच्छी नहीं है, यदि वे भी खाएँ, तो उनकी 33 फीट की आंत के साथ बहुत बड़ा अन्याय है। फिर बीमार होकर डॉक्टर के पास जाएँगे। बहुत सारे रोग इस रसना के कारण ही होते हैं।

एक अध्यापक आर्यसमाज के मन्त्री थे। वे डायबिटीज के रोगी थे। हमारे यहाँ आते थे, तो मैं डरता था कि कोई प्रसाद बाँटें, तो ये हलवा नहीं खावें, पर बहुत खाते थे। किसी को कैसे मना करें, लेकिन मैं युवकों से कहता था कि उनका का ध्यान रखना। अन्त में डायबिटीज बढ़ा, गुर्दे खराब हुए तथा जल्दी ही चले गए। आदमी सज्जन थे, पर जिह्वा पर नियन्त्रण नहीं था। यह एक उदाहरण दिया है, ऐसे ही अनेकों उदाहरण हैं। जैसे कोई शराब पीने का आदी है। डॉक्टर छोड़ने के लिए कहता है, तो कुछ दिन के लिए छोड़ देते हैं और फिर शुरू हो जाते हैं। इन्द्रियाँ हमारी दासी हैं और हम उनके मालिक हैं। लेकिन आज इन्द्रियाँ मालकिन बन गईं और हम दास बन गए। जो जिह्वा कहेगी, वह खायेंगे। जो बुद्धि कहेगी, वह नहीं खायेंगे। जो कान कहेगा वह सुनेंगे, बुद्धि की नहीं मानेंगे। जो आँख कहेगी वह

देखेंगे, बुद्धि की नहीं मानेंगे। जब घोड़े सारथी की ही बात नहीं मानेंगे, तो घोड़ों का, रथ का और रथी का क्या होगा? जो उनका होगा, वही आज हो रहा है। अगर कोई अधिकारी अपने चौकीदार को इतना महत्त्व दे कि उसे अधिकारी मान ले और स्वयं चौकीदार बन जाए, तो क्या होगा? वैसे ही हमने अधिकारी को चौकीदार और चौकीदार को अधिकारी बना दिया है। अधिकारी चौकीदार के संकेतों पर नाच रहा है। ऐसे अधिकारी का क्या लाभ? ऐसे आत्मा का क्या लाभ?

कहीं नहीं लिखा कि स्वादहीन भोजन खाओ, पर स्वास्थ्य पहले है। स्वास्थ्य के अनुकूल स्वादिष्ट भोजन खाना चाहिए। स्वादिष्ट भोजन से लार ज्यादा निकलती है, जिससे वह सुपाच्य बन जाता है और रस आदि भी अधिक निकलता है। जिसमें स्वाद ही नहीं आ रहा और जो मन को तृप्त नहीं कर रहा है, वह भोजन पचना भी कठिन होता है। स्वाद अपने ऊपर भी निर्भर करता है, किसी को तीखे में स्वाद आता है, किसी को मीठे में स्वाद आता है। अपने मन को ऐसा बनाएँ कि सात्त्विक भोजन में स्वाद आये, यदि राजसिक और तामसिक में स्वाद आएगा, तो बिना नकेल के ऊँट वाली बात हो जाएगी।

सारांश यह है कि इन्द्रियों को अपनी दासी मानें, तो हम उन पर शासन कर सकते हैं और यदि हम दास बन गए, तो यही गति होगी, जो इस समय हो रही है।

12. 'मैं आत्मा नहीं हूँ' मानने का परिणाम

पूर्व में हमने जाना कि इन्द्रियों को अपना दास-दासी मानें, तभी उन पर नियन्त्रण होगा, अन्यथा नहीं। लेकिन आज सारा संसार उन्हीं का दास हो रहा है। आज जैसा मन कहे, इन्द्रियों से वैसा ही आचरण करना, स्वतन्त्रता मानी जाती है। लेकिन वास्तव में आत्मा के नियन्त्रण में रहना ही स्वतन्त्रता है। इन्द्रियों के नियन्त्रण में रहना स्वतन्त्रता नहीं, अपितु स्वच्छन्दता व लम्पटता है। लेकिन जहाँ विज्ञान के नाम पर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को नकारा जाता हो, वह समाज और विश्व कैसे अनुशासित हो सकता है? कैसे स्वतन्त्र हो सकता है? कैसे अपनी इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण कर सकता है? इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण वही व्यक्ति कर सकता है, जो इन्हें अपना दास मानेगा। जैसे मैं कहूँ- मेरा हाथ, मेरी आँख, मेरी नाक, मेरा मन, मेरी पुस्तक, मेरी गाड़ी आदि। मेरी गाड़ी, मेरी पुस्तक अर्थात् मैं उनसे अलग हूँ। ऐसे ही मेरा मन, मेरी इन्द्रियाँ अर्थात् मैं उनसे अलग हूँ।

कभी-कभी यह सोचे कि मेरी आत्मा, लेकिन शुद्ध उच्चारण यह है कि मैं आत्मा ऐसा सोच रहा हूँ। 'मेरी आत्मा' कहना एक परम्परा बन गई है, भले ही वह दार्शनिक दृष्टि से शुद्ध न हो। लेकिन वे कहना यही चाहते हैं कि मैं आत्मा हूँ। मेरा आत्मा कहेंगे, तो आत्मा से ऊपर भी कुछ मानना पड़ेगा। आत्मा से ऊपर परमात्मा है, लेकिन उनका शरीर में कोई हस्तक्षेप नहीं, मात्र प्रेरणा है, लेकिन उस प्रेरणा को कोई नहीं सुनता।

जब भी कोई व्यक्ति अच्छा कर्म करता है, तो अच्छा कर्म करते समय उसे अन्दर से प्रसन्नता, आनन्द, उत्साह, शान्ति का अनुभव होता है और जब भी कोई बुरा कर्म करता है, तो उसे लज्जा, दुःख, अशान्ति, शंका, भय का अनुभव होता है कि कहीं कोई देख न ले। जिस बात के लिए हमें यह सोचना पड़ता है कि कहीं कोई देख न ले, वैसा कार्य करना ठीक नहीं, चाहे वह किसी भी इन्द्रिय से जुड़ा हो। कुछ तो मोबाइल लेकर ऐसे देखेंगे कि कहीं कोई देख न ले, रजाई ओढ़कर फिर मोबाइल चलाएँगे। एक तो इसलिए डरेंगे कि कोई हमारे जैसा देखेगा, तो कहेगा- सो जाओ, बहुत विलम्ब हो गया। यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन वह कुछ

छुपा भी रहा है। वह जो देख रहा है, यदि उसे छुपा रहा है, तो पाप है। भगवान् मनु ने मनुस्मृति में कहा है कि जो तू यह सोचता है कि मुझे कोई देख नहीं रहा, तो यह तेरा भ्रम है। एक मुनि है, जो मन की बात जानने वाला है, वह परमात्मा तेरे भीतर बैठा तुझे जान रहा है कि तू क्या सोच रहा है।

आजकल के लड़के थोड़ा पढ़कर भी यह सोचते हैं कि क्या आत्मा-परमात्मा? अगर वे ऐसा सोचते हैं, तो वास्तव में वे बहुत नादान हैं, चाहे वे आज की शिक्षा की दृष्टि से बहुत पढ़े हुए हों। इस विषय पर हमसे कोई भी चर्चा कर सकता है, बस शर्त यह है कि उसको अच्छा विज्ञान आता हो, अन्य कोई चर्चा करने योग्य नहीं, क्योंकि वह ज्यादा नहीं सोच पाएगा, विज्ञान वाला ही उस स्तर तक सोच सकता है। जो परमात्मा की वाणी के अनुसार चलता है, उसकी प्रेरणा की उपेक्षा नहीं करता, वह मन और इन्द्रियों को जीत सकता है। परन्तु इसके लिए सबसे पहले उसे ईश्वर पर विश्वास करना पड़ेगा, उस पर विचार करना पड़ेगा कि वह है भी या नहीं? मान लें कि कोई व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास नहीं भी करे, तो वह यह सोचे कि मेरे कान किसलिए हैं, इनका क्या उपयोग है? माइक, कुर्सी, मोटरसाइकिल, मोबाइल आदि का क्या उपयोग है? उपयोग और दुरुपयोग दो चीजें हैं। एक कुर्सी पर मैं बैठा हूँ, यह इसका उपयोग है और अगर कुर्सी को मैं अपने सिर पर बैठा लूँ, तो यह इसका दुरुपयोग है। एक व्यक्ति मोटरसाइकिल से अपना कोई कार्य करेगा, वह तो उपयोग है। लेकिन एक व्यक्ति यूँ ही घूमेगा, तो यह उसका दुरुपयोग है, और एक व्यक्ति मोटरसाइकिल लेकर अपराध करने जाएगा, तो यह उसका और बड़ा दुरुपयोग है।

कुछ कार्य हम अपनी इन्द्रियों के मनोरंजन के लिए करते हैं, जबकि इन्द्रियाँ मनोरंजन के लिए नहीं हैं। इन्द्रियाँ कार्य करने के लिए हैं, जैसे आँख देखने के लिए है, निरुक्त में कहा है- **सुहितम् खेभ्यः सुखम्।** मैं ऐसा व इतना देखूँ कि मेरी आँखें बहुत दिनों तक देखने लायक रहें, देख-देख कर जल्दी अन्धे हो जाएँ, तो वह इन्द्रिय-सुख नहीं। ऐसे ही प्रत्येक इन्द्रिय को समझना चाहिए। ऐसा देखें, जिसे देखकर हमें कुछ लाभ हो, जिसका हमारे जीवन में कुछ उपयोग हो। जैसे कोई पढ़ेगा, कोई रास्ते में कांटे देखेगा, तो बचकर चलेगा, लेकिन अनावश्यक देखना

और वह देखना जिसका मन और आत्मा दोनों पर बुरा असर पड़े, तो ऐसा देखना आँखों का दुरुपयोग है। वैसा देखने के लिए आँख नहीं बनाई, इसलिए वेदमन्त्र कहता है-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

अर्थात् हम कानों से भद्र ही सुनें और आँखों से भद्र ही देखें। भद्र रुचिकारी नहीं, अपितु हितकारी होता है। आज जिसको स्वतन्त्रता कहते हैं, वह रुचियों की स्वतन्त्रता है, हित की नहीं। हित की स्वतन्त्रता में कोई विवाद भी नहीं है। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की कितनी सुन्दर सीमा बांधी है कि प्रत्येक हितकारी कार्य में सब स्वतन्त्र रहें और प्रत्येक सर्वहितकारी कार्य में सब परतन्त्र रहें।

मेरा हित इसमें है कि कोई शाक मेरे स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं पड़ता, तो उसे मैं न खाऊँ, यह मेरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। मेरे लिए ये कपड़े पहनना हितकारी व सुखकारी है, तो मुझे ये कपड़े पहनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। कैसा जमाना आ गया कि पुरुष पूरे कपड़े पहनते हैं तथा बालिकाएँ व युवतियाँ छोटे-छोटे वस्त्र पहनकर घूमती हैं। ऐसे में अगर हमारे पूर्वज आ जाएँ, तो हृदयाघात से मर जायेंगे। क्या यही स्वतन्त्रता है? ऐसी स्वतन्त्रता हमने सीखी कहाँ से? ये बौद्धिक दासता है। कभी मैंने एक गीत लिखा था, उसमें एक पंक्ति थी-

पश्चिमी सभ्यता के दासो! मैं चुनौती दे रहा
आओ सत्य विज्ञान जानें, जो सुख का आधार है।

पश्चिमी सभ्यता से जो उन्होंने सीखा है, उनको तो हम चुनौती देते हैं कि वे मदारी के बन्दर हैं और अगर नहीं हैं, तो हमसे बात कर लें। उनके मदारी भारत में नहीं हैं, अपितु बाहर बैठे हैं और जो भारत में हैं, वे भी मदारी नहीं, अपितु बन्दर हैं, क्योंकि वे भी बाहर से सीख रहे हैं। चाहे बड़े-बड़े प्रोफेसर हों, शिक्षाविद् हों, समाजशास्त्री हों, अर्थशास्त्री हों या वैज्ञानिक। भारत के सब लोग बन्दर हो चुके हैं और उनके मदारी जैसे बाहर से डुगडुगी बजाते हैं, वे वैसे ही नाचते हैं। छोटे वस्त्र

पहनकर घूमने वाले तो बहुत पीछे हैं, बन्दरों की श्रेणी से भी बहुत नीचे हैं, क्योंकि मुझे नहीं लगता कि ज्यादा पढ़े-लिखे लोग ऐसा करते होंगे, ये सामान्य स्तर के लोग हैं।

मैं पाठकों से कहना चाहूँगा कि वे अपने अन्दर झाँककर देखें। अगर आपको कपड़े पहनने के लिए भी किसी और से सीखना पड़ता हो, बालों की कटिंग कराने के लिए किसी और से सीखना पड़ता हो, शौचालय, पेशाब जाने के लिए भी किसी और से सीखना पड़ता हो कि कैसे बैठना है। सामान्य भारतीय शौचालय अच्छा नहीं लगता, लेकिन घुटने खराब हों, तो वह अलग बात है। जिसको मल-मूत्र त्याग करना भी नहीं आता, जिसको खाना भी नहीं आता, जिसको कपड़े पहनना भी नहीं आता, वह कहता है कि मैं प्रगतिशील हूँ, बुद्धिमान् हूँ। ऐसा कोई व्यक्ति सोचता है कि मैं बुद्धिमान् हूँ, तो यही उसकी सबसे बड़ी बुद्धिहीनता है।

दूसरी बात मैं यह कहूँगा कि सामान्य आदमी भी जानता है, परीक्षा में नकल करने वाला कभी अधिकारपूर्वक नहीं कह सकता कि मैं होशियार लड़का हूँ, क्योंकि होशियार तो नकल ही नहीं करते। जिसकी नकल करता है, उसको वह अपना आदर्श मानता है, उसे बुद्धिमान् और अपने से प्रगतिशील मानता है। लेकिन यहाँ तो नकल करने वालों को बुद्धिमान् माना जा रहा है, यह कौन-सी बुद्धिमानी है? इसलिए अपने आत्म-स्वाभिमान को जगाओ। मत सोचो कि आप मूर्खों की सन्तान हो। आपकी रगों में बहुत से बुद्धिमान् वैज्ञानिक ऋषियों का रक्त बह रहा है, लेकिन आप भूल गए। मैं केवल आपको याद दिला रहा हूँ, कोई नई बात नहीं कह रहा। मैं तो यही कहूँगा कि अपनी जड़ों को देखो।

एक बार एक शेर का बच्चा कहीं खो गया और कोई पशुपालक भेड़ चराता था, तो वह भी भेड़ों में खेलने लगा। शेर का बच्चा भी नहीं जानता था कि वह कौन है और भेड़ भी नहीं जानती थी कि वह शेर है। वह बड़ा हो गया, तो भी वहाँ आराम से रहता और अपने को भेड़ ही समझने लग गया। एक बार शेर आ गया और जैसे उसने गर्जना की, इसने भी उसी प्रकार गर्जना की, इसकी आवाज भी वैसी ही थी। शेर को देखकर सारी भेड़ें भाग गईं और पशुपालक भी भाग गया।

तब उसने सोचा कि मुझे देखकर क्यों नहीं भागते, मतलब मैं भी ऐसा ही हूँ। उस शेर ने उसे याद दिलाया कि तुम भेड़ नहीं, तुम शेर हो। बस मैं भी वही काम कर रहा हूँ। आप लोग जो अपने तथा अपने पूर्वजों को मूर्ख समझते हैं, यह समझ रहे हैं कि हमें अमेरिका, यूरोप, जापान, चाइना, रूस सिखाएगा, यह आपकी नादानी है। इसलिए अपने ढंग से जीना सीखिए।

जो कहते हैं कि हम तो अपने ढंग से जीते हैं, हम तो स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्र हो जाएँ, तो कमी किस बात की? मैं यही तो कहता हूँ, आप स्वतन्त्र नहीं, स्वच्छन्द है। नकल करने वाले हैं। हीनता की भावना आपके अन्दर घर कर गई है। जब व्यक्ति यह सोच लेता है कि मैं आत्मा नहीं हूँ, परमात्मा कोई नहीं है, मैं इन्द्रियाँ हूँ, मन हूँ, तो उन पर कभी नियन्त्रण नहीं कर सकता। क्योंकि वह स्वयं को उनसे ऊपर नहीं मानता। इसलिए जितेन्द्रिय बनने के लिए अपने स्वरूप की यथार्थता को सबसे पहले समझना होगा। कोई यह सोचेगा कि यह विषय ब्रह्मचारियों का है, गृहस्थियों का नहीं। ऐसा सोचना सही नहीं है, महादेव शिव ने यह सब गृहस्थों के लिए लिखा है।

हम न तो मन हैं, न हम कोई इन्द्रिय हैं, बल्कि ये हमारे साधन हैं। हम इनके स्वामी हैं और हम अमर हैं, मन-इन्द्रियाँ अमर नहीं हैं। यद्यपि ये भी एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते हैं, लेकिन फिर भी अमर नहीं हैं, प्रकृति से बने हैं। हम आत्माओं को ये साधन क्यों दिए हैं? किसी ने हमें कोई पुस्तक दी, तो क्यों दी? कोई उपकरण दिए, तो क्यों दिए? दवाई दी, तो क्यों दी? यह हम सोचें। दवाई फेंकने के लिए नहीं दी है, खाने के लिए दी है। रुचियों के अनुसार मत चलिए, अपने हित में जो हो उसमें स्वतन्त्र रहिए, लेकिन जो सर्वहित में हो, उसमें परतन्त्र रहिए।

जो व्यक्ति कहता है कि यह मेरा निजी जीवन है। मैं कहता हूँ कि निजी जीवन कुछ होता ही नहीं। हमारा व्यक्तिगत जीवन इस समूची सृष्टि को प्रभावित करता है। हमारे आचार-विचार, शरीर एवं मस्तिष्क से निकलने वाली तरंगें ब्रह्माण्ड को प्रभावित करती रहती हैं, तो इसमें व्यक्तिगत क्या रहा? दूसरी बात जिसका व्यक्तिगत जीवन अच्छा नहीं हो, क्या वह स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है? एक

व्यक्ति शराब पीता है और कहता है कि मेरी निजी जिन्दगी है। कोई व्यक्ति दुराचार करता है और कहता है कि यह मेरी निजी जिन्दगी है। दुराचार भी करता है, शराब भी पीता है, असत्य भी बोलता है, बेईमानी भी करता है। असत्य बोलना और बेईमानी को समाज से जोड़कर कह देंगे। लेकिन शराब पीना, कपड़े पहनना, माँस खाना, दुराचार करना, ब्रह्मचर्य की हानि करना आदि को वे कहेंगे कि यह मेरी निजी जिन्दगी है। ऐसी निजी जिन्दगी वाले मिलकर किसी समाज को बनाएँगे, तो क्या समाज अच्छा होगा? अगर सब चोर हो जाएँ और चोर मिलकर संगठन या संस्था बनाएँ, तो क्या वह संस्था अच्छी होगी? चोर मिलकर किसी राष्ट्र का निर्माण करें, तो क्या वह राष्ट्र अच्छा होगा? ऐसे ही यदि चोर और बेईमान मिलकर किसी विश्व का निर्माण करें, तो क्या विश्व अच्छा होगा? निजी जिन्दगी कुछ नहीं होती, निजी जिन्दगी अच्छी है, तो समाज अच्छा होगा, राष्ट्र अच्छा होगा और विश्व अच्छा होगा।

13. धरती पर चलना नहीं आता और गैलेक्सियों में...

पूर्व में हम भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के लक्षण 'शम' पर विचार कर रहे थे। जैसा कि हमने स्पष्ट किया था कि केवल साधु-संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों के लिए नहीं, अपितु यह धर्म का उपदेश प्रत्येक गृहस्थ के लिए है। पूर्व में हमने बताया कि जब मनुष्य यह मानता है कि मैं आत्मा हूँ, तो वह मन और इन्द्रियों को अपना दास समझता है। लेकिन अगर वही मनुष्य यह सोच ले कि मैं शरीर हूँ, तो वह मन और इन्द्रियों का दास बन जाएगा। आज अधिकांश लोग यही सोचते हैं कि मैं शरीर हूँ और मरने के बाद कुछ नहीं होगा। कभी संसार में चार्वाक नाम का एक सम्प्रदाय आया था, उसकी यह घोषणा थी-

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

जब तक जियो तब तक सुख से जियो, चाहे ऋण लेकर घी पियो, क्योंकि मरने के बाद कोई लौटकर नहीं आता। जब मैं मथुरा पढ़ता था, तो एक बार मथुरा के छत्ता बाजार में से निकल रहा था। वहाँ एक घी की दुकान के बाहर एक छोटा सा बोर्ड लगा हुआ था कि 'ऋण लेकर घी पियो'। मैंने उस समय सोचा कि कोई इससे ऋण लेने वाला नहीं आया होगा, अगर कोई घी लेकर पैसे वापस नहीं देगा, तो यह बोर्ड उतार लेगा। उसके बाद देखा, तो उसका बोर्ड गायब था। उसने लिखा था कि 'ऋण लेकर घी पियो', तो किसी ने ऋण लिया होगा और वापस नहीं किया होगा, इसलिए उसने बोर्ड हटा लिया। उस समय चार्वाक सम्प्रदाय को बहुत बुरा माना जाता था। यह सम्प्रदाय इसलिए पैदा हुआ क्योंकि उससे पहले आत्मा-परमात्मा को मानने वाले लोग पशुओं की बलि चढ़ाते थे। उनके पाँच मकार चल रहे थे- मदिरा पीना, माँस खाना, मछली खाना, धन कमाना और दुराचार करना। ये पाँच चीजें ही इनकी पाँच पूजाएँ कहलाती थीं। मनुष्य और पशुओं की यज्ञ में बलि चढ़ाई जाती थी, तब चार्वाक मत का उदय हुआ था।

वस्तुतः सारे सम्प्रदाय एक दूसरे की प्रतिक्रिया में जन्मे हैं। चार्वाक ने कहा

जब पशुओं की बलि चढ़ाने से स्वर्ग मिलता है, तो अपने माँ-बाप की बलि क्यों नहीं चढ़ाते? तब उसे लगा कि अगर ऐसा ईश्वर और ऐसा धर्म है, तो ऐसे ईश्वर और धर्म की समाज को कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार नास्तिकों को जन्म छुपे हुए नास्तिकों अर्थात् झूठे आस्तिकों ने दिया। आज भी झूठे आस्तिक बहुत हैं, वास्तव में वे अन्दर से नास्तिक हैं। जितने भी धर्म के नाम पर आडम्बर चल रहे हैं अर्थात् जितने भी सम्प्रदाय चल रहे हैं, उनकी झूठी मान्यताओं ने ही संसार में नास्तिकता को जन्म दिया है। पहले एक चार्वाक सम्प्रदाय था, लेकिन अब नास्तिकता इतनी बढ़ चुकी है कि हर जगह चार्वाक ही दिखाई देता है।

आज सब जगह ऋण बाँटे जा रहे हैं और उस ऋण ने हमारे मन व इन्द्रियों को चंचल बना दिया है। क्योंकि जब ऋण मिल रहा है, तो आदमी सोचता है कि मैं हर इन्द्रिय से उपभोग करूँ। ऋण नहीं मिलेगा, तो आदमी अपने खर्च में कमी करेगा। ऋण आसानी से और बिना ब्याज के मिल रहा है, तो फिर ऋण लेने से क्यों चूकें? जैसे चार्वाक कहता था कि मरने के बाद कोई नहीं आता, वैसे ही हमारे यहाँ लोग सोचते हैं कि ऋण लेने के बाद क्या पता सरकार माफ कर दे, इसलिए ऋण लो। कोई योजना आएगी और सरकारें व राजनीतिक पार्टियाँ भी वोट लेने के लिए ऋण माफ करने की घोषणा कर देंगी, तो हमारे मजे हो जायेंगे हैं। यह सुख का नहीं, बल्कि दु:ख का मार्ग है। जिसको सुख से रहना है, वह अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करे व अपने व्यय में कटौती करे।

मनुष्य भूख मिटाने के लिए रोटी खाता है, लेकिन खाने के नाम पर कितना खर्च करता है? मनुष्य तन को ढकने व सर्दी-गर्मी से सुरक्षा के लिए कपड़े पहनता है, लेकिन कपड़ों पर कितना खर्च करता है? पैरों की सुरक्षा के लिए जूते पहनता है, लेकिन जूतों पर कितना खर्च करता है, क्योंकि उसे ऋण मिल जाता है। कभी भी ऋण की अथवा किसी से लेने की अपेक्षा न करें, क्योंकि ऐसा करके हम अपने मन और आत्मा को अनियन्त्रित कर रहे हैं। इन्द्रियों को वही जीत सकता है, जिसने अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव कम कर लिया हो। केवल स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए और अन्य कोई ऐसी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, जो केवल दिखावे के लिए होती हो। आज उस भोजन पर कोई खर्च नहीं कर रहा, जिससे

शरीर बनता है, बल्कि ऐसे भोजन पर खर्च करते हैं, जिससे शरीर बिगड़ता है। जैसे- चाय, बीड़ी, अफीम, गुटके, माँस, फास्ट-फूड का खर्च और जितने भी स्वादिष्ट महंगे व्यञ्जन हैं, उनका खर्च। ये सब शरीर को बिगाड़ने वाले हैं और शरीर को पुष्ट बनाने वाले दाल, चावल, रोटी, सब्जी, दूध, दही, घी आदि हैं, इन पर बहुत कम खर्च होता है।

शहरों में बाजार जाकर देखें कि शरीर बिगाड़ने वाले भोजन पर कितना खर्च होता है? क्योंकि इन्द्रियाँ हमारे वश में नहीं है। जिह्वा जिस दुकान पर या जिस होटल पर ले जाना चाहती है, उसी पर ले जाती है। हममें इतनी क्षमता नहीं है कि हम उसे रोक सकें। आँख जो कहती है, वही देखते हैं, क्योंकि हममें उसे रोकने की क्षमता ही नहीं है। कान जो कहता है, वही सुनते हैं, क्योंकि हममें उनको रोकने की क्षमता नहीं है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि हमें स्वयं का बोध नहीं है, जैसा कि हमने पूर्व में जाना था।

आप जरा विचार करें, जब हमें किसी चीज की तीव्र इच्छा होती है, तब हमारी कोई इन्द्रिय परेशान करती है और यदि उसकी पूर्ति नहीं होती, तो क्रोध आता है। अगर किसी की इच्छा हो रही है कि उसे मिठाई खानी है और उसे मिठाई न मिले, तो उसके शरीर में बेचैनी होगी, क्रोध आएगा, निराशा होगी। एक इन्द्रिय की इच्छा पूरी न होने से कितनी सारी तरंगें उत्पन्न होंगी? निराशा व शोक की तरंगें, क्रोध की तरंगें और जो जीभ से स्वाद के लिए तरंगें निकल रही हैं, वे तरंगें। कहीं तो समाचार में ऐसा देखते हैं कि माँ ने बेटे को मोबाइल नहीं दिया, तो बेटे ने माँ की हत्या कर दी। एक बार समाचारपत्र में पढ़ा था कि दिल्ली में 15-16 वर्ष का बच्चा माँ से मोबाइल के लिए हठ कर रहा था और जब मोबाइल नहीं मिला, तो उसने माँ की हत्या कर दी।

लोग पूछते हैं कि वैदिक फिजिक्स में इसका समाधान कहाँ है? वे सोचते हैं कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, गैलेक्सियों की बातें ही फिजिक्स हैं। लेकिन वे नहीं सोचते हैं कि 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। वे यह नहीं सोचते हैं कि उन्हें जमीन पर चलना नहीं आता और गैलेक्सियों में उड़ना चाहते हैं, क्योंकि गैलेक्सियों में उड़ना बाद में

होगा, पहले जमीन पर चलना सीखना होगा। अपना शरीर देखो, शरीर में क्या-क्या हो रहा है, यह जानना भी तो फिजिक्स ही है, जिसे बायो-फिजिक्स कहते हैं और बायो-फिजिक्स जो बताती है, हम उससे बहुत अधिक गहराई में बताते हैं। बायो-फिजिक्स यही तो बताती है कि शरीर में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं और कैसे हो रहे हैं? लेकिन बायोफिजिक्स की पहुँच आयन्स तक ही है, इससे आगे नहीं। यदि हम और अधिक गहराई में जायेंगे, तो बायोफिजिक्स से हटकर पार्टिकल फिजिक्स की बात करेंगे। लेकिन हम पार्टिकल फिजिक्स से भी आगे की बात कर रहे हैं। जब हम किसी के द्वारा परेशान हो रहे होते हैं, जैसे मान लीजिए किसी को किसी से ईर्ष्या हो रही है कि यह आदमी हमसे अधिक धनवान्, बलवान्, बुद्धिमान् अथवा सुखी है। वह आदमी यही सोचता रहता है। ऐसा सोचते रहने से उसके अन्दर ईर्ष्या के साथ-साथ क्रोध भी उत्पन्न होगा। वह सोचेगा कि यह मर जाए, तो मेरे लिए अच्छा होगा।

सुख-दु:ख बहुत कुछ मनोदशा पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति विकलांग है, चल नहीं पा रहा है। वह बैठा सोच रहा है कि इस रोड़ पर जो चल रहे हैं, वे कितने सुखी हैं, उनकी दो टांगें हैं। चल भी रहे हैं और दौड़ भी रहे हैं। यदि मेरी भी दो टाँगें होतीं, तो भले ही मैं दौड़ नहीं पाता, लेकिन चल तो पाता, कितना सुख मिलता। मान लेते हैं, उसकी टांग भी किसी ने सही करवा दी। अब उससे दौड़ा नहीं जाता, लेकिन धीरे-धीरे चला जाता है। दो-चार दिन तो अच्छा लगेगा कि बहुत सुख मिला। फिर उसको कोई दौड़ता हुआ या व्यायाम करता हुआ दिखेगा, तो वह सोचेगा कि चलने से क्या होगा? मैं तो दौड़ नहीं लगा पा रहा और व्यायाम भी नहीं कर पा रहा। फिर वह सोचेगा कि मेरे जैसे सब हों, तो अच्छा रहेगा, मुझसे आगे कोई नहीं हो ना चाहिए। मान लेते हैं कि वह दौड़ने भी लग गया। फिर उसके पास से कोई साइकिल लेकर निकला, तो वह सोचेगा कि काश! मेरे पास भी एक साइकिल होती, तो कितना अच्छा होता। उसने साइकिल खरीदी, दो-चार दिन अच्छी लगी, फिर कोई मोटरसाइकिल लाया, तो साइकिल भी दु:ख देने लगी। मोटरसाइकिल के लिए कहीं से कर्ज लेगा, कहीं पर चोरी करेगा, मोटरसाइकिल खरीदेगा। फिर कहीं से कोई कार लेकर निकला, तो मोटरसाइकिल भी दु:ख देने

लग जाएगी। अर्थात् इस सुख का कोई पैमाना नहीं है। उसको न तो मोटरसाइकिल दु:ख दे रही है, न साइकिल दु:ख दे रही है, न ही पैर दु:ख दे रहे हैं, बल्कि उसको ईर्ष्या दु:ख दे रही है, क्योंकि वह दूसरों के सुख को देखकर जल रहा है।

जब दुर्योधन राजसूय यज्ञ से वापस हस्तिनापुर आया था, तो शकुनि धृतराष्ट्र से कहता है कि महाराज! दुर्योधन बहुत दुबला हो गया, उसका शरीर पीला पड़ गया है। इसका कारण ईर्ष्या थी। बायलॉजी, मेडिकल साइंस व फिजियोलॉजी के लोग जानें कि ईर्ष्या के कारण से शरीर में किन-किन हार्मोन्स की उत्पत्ति होती होगी और वे हार्मोन्स शरीर के कौन-कौन से अंगों को प्रभावित करते होंगे। इसी प्रकार क्रोध, शोक व घृणा की आग में भी कौन-कौन से हार्मोन्स की उत्पत्ति होती है, यही तो फिजिक्स है। शरीर की फिजिक्स यही है कि वह हार्मोन्स क्यों उत्पन्न कर रहा है? मनुष्य स्वयं जल रहा है और दूसरों को भी जला रहा है। क्योंकि हम ऐसा सोचकर जीते हैं कि हमारा यह जीवन ही अन्तिम जीवन है। यहाँ अन्तिम जीवन का तात्पर्य यह है कि हमारा जीवन पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं रहेगा और हमें शरीर की रुचियों की पूर्ति के लिए जो करना है, वह करना चाहिए, बस यही जीवन है।

संसार में रुचियों ने बहुत संघर्ष और विश्वयुद्ध कराये हैं। कभी किसी के हित नहीं टकराते, रुचियाँ टकराती हैं। लेकिन आज रुचियों के नाम पर स्वतन्त्रता की बात की जाती है। जिस दिन इच्छाएँ अधिकार बन जायेंगी, उस दिन संसार में रक्त भरी क्रान्तियाँ आयेंगी और यह हो भी रहा है। मेरी इच्छा है, मैं ऐसे जीना चाह रहा हूँ और तुम्हारी इच्छा है, तुम अपनी तरह से जियो, यदि ऐसा होगा तो विचारों में टकराव होगा। रुचियाँ टकराती हैं, असत्य टकराते हैं, लेकिन न कभी सत्य टकराता है और न कभी हित टकराते हैं। सत्य और हित की बात वही कर सकता है, जिसने स्वयं को आत्मा मान लिया हो, परमात्मा को भी जान लिया और उसकी व्यवस्था को भी जान लिया हो तथा जिसको यह समझ आ गया हो कि मेरे हित में सबका हित है और सबके हित में मेरा हित है।

व्यक्तिगत हित की बात ऋषि दयानन्द ने की है कि स्वहितकारी नियम में सब

स्वतन्त्र और सर्वहितकारी नियम में सब परतन्त्र रहें। जैसे मान लेते हैं, कोई फल मेरे लिए हितकारी है, लेकिन हो सकता है कि किसी और के लिए हितकारी न हो। पर उसे यह सोचना चाहिए कि जो मेरे लिए हितकारी है, वह किसी और के लिए अहितकारी न हो, अन्यथा नहीं लेना चाहिए। जैसे मान लें कि कोई फल खाना मेरे लिए हितकारी है, तो क्या उस फल को हम किसी के खेत से चुराकर खा सकते हैं? उत्तर है- नहीं, क्योंकि वह फल मेरे लिए तो हितकारी है, लेकिन जिसकी हमने चोरी की, उसके लिए अहितकारी होगा। दूसरी बात मुझे चोरी करने का पाप भी तो लगा, इसलिए मेरे लिए भी हितकारी कहाँ रहा? सम्भव है कि चुराकर खाने से शरीर बलवान् बन जाए, परन्तु मन और आत्मा कभी बलवान् नहीं बनेंगे।

स्वास्थ्य का अर्थ केवल यह नहीं होता कि शरीर से बलवान्, अपितु यह होता है कि जहाँ सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य में स्थित हों। मन अपने में स्थित हो, आत्मा अपने में स्थित हो, बुद्धि अपने में स्थित हो, सब संतुलन में हों। सबका स्वर अलग-अलग चले, तो वह हितकारक नहीं है। शरीर बलवान् है, लेकिन मन अशान्त है, मन में राग-द्वेष, काम, क्रोध आदि अनेक दुर्गुण भरे हुए हैं, तो वह स्वस्थ नहीं है। तंदुरुस्त और स्वस्थ में बहुत अन्तर है। उर्दू में तंदुरुस्त बोला जाता है, मुझे नहीं लगता वहाँ इसका कोई विशेष अर्थ हो अर्थात् तन दुरुस्त बस इतना ही अर्थ है। लेकिन 'स्वस्थ' का अभिप्राय इतना ही नहीं है। स्वस्थ अर्थात् जहाँ बुद्धि, इन्द्रियाँ, आत्मा इन सबका संतुलन हो। स्वस्थ और इन सबके संतुलन वाला व्यक्ति ढूंढने से भी संसार में नहीं मिलेगा। इस परिभाषा के अनुसार एक उच्च कोटि का योगी ही स्वस्थ हो सकता है।

जब हम अपनी इन्द्रियों के दास बन रहे होते हैं, तब हमारे शरीर में बहुत सारे हार्मोन्स स्रावित हो रहे होते हैं। वे हार्मोन्स सबसे पहले मस्तिष्क और हृदय को प्रभावित करते हैं। अप्रिय समाचार सुनने से हृदय तेजी से धड़कने लग जाएगा और मन में अशान्ति हो जाएगी और ऐसा होने से पूरा शरीर धीरे-धीरे रोगों से ग्रस्त हो जाता है। मन ने शोक समाचार सुना, तो हृदयाघात कैसे हो गया? हमने कोई गोली नहीं मारी, लेकिन विचारों और शोक की तरंगों ने हृदय को आघात पहुँचा दिया, जिससे सारा शरीर समाप्त हो गया। इसलिए हम स्वयं को आत्मा मानकर आत्मा के

अनुकूल सभी इन्द्रियों और मन को चलाने का प्रयत्न करें और यह निरन्तर अभ्यास का विषय है। अगला प्रवचन ब्रह्मचर्य पर होगा। ये सब इन्द्रियाँ संतुलित हो गईं, तो ब्रह्मचर्य का पालन बहुत आसान है। इन्द्रियों का दास बनकर कोई ब्रह्मचारी नहीं रह सकता।

14. ब्रह्मचर्य

हम भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के लक्षण 'शम' पर विचार कर रहे थे। 'शम' का अर्थ होता है- कल्याण, शान्ति व संतुलन। शान्ति का अर्थ निष्क्रियता नहीं, अपितु संतुलन है। सभी इन्द्रियों, मन व आत्मा में संतुलन होना शम है। सब इन्द्रियों से काम इन्द्रिय प्रभावित होती है। इसका नियन्त्रण सबसे कठिन है, लेकिन जो त्वचा, आँख, कान, नाक व जिह्वा आदि इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर लेगा, तो उसका इस पर भी नियन्त्रण हो जाएगा। यदि इन पर नहीं है, तो इस पर भी नहीं होगा। व्यक्ति बुद्धि से विचार करके सात्त्विक ही सुने व सात्त्विक ही देखे, कहीं कोई गलत बात हो रही हो, तो वहाँ से उठकर चला जाए। एक बार मैं किसी विद्वान् की मोटरसाइकिल पर जा रहा था। रास्ते में एक छात्रा निकली, तो वह उसको मुड़कर देखने लगे। मेरी दृष्टि उन पर थी, लेकिन मैंने उन्हें कुछ कहा नहीं।

अनेक लोग ऐसे होते हैं कि अखबार पढ़ेंगे, तो सारा पढ़ेंगे और चित्रों को अवश्य देखेंगे। इसी कारण मैंने अपने यहाँ अखबार बन्द करा दिया था और राजस्थान-पत्रिका के प्रधान सम्पादक को भी लिखा था कि आप ये क्या छापते हैं? परन्तु अखबार वालों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्हें अखबार चलाना है और पैसे कमाने हैं, क्योंकि जितना सस्ता देते हैं, उतना सस्ता छप ही नहीं सकता। मैंने उनको सुझाव दिया था कि अच्छे विज्ञापन निकालें। सात्त्विक ही देखें व सात्त्विक ही खाएँ। इन्द्रियों की ऐसी गुलामी हो गई कि सात्त्विक पद्धति किसी को अच्छी ही नहीं लगती। जिसका इन विषयों पर नियन्त्रण नहीं है, वह कभी भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य का पालन केवल ब्रह्मचारियों के लिए ही नहीं होता, अपितु गृहस्थों के लिए भी होता है। गृहस्थाश्रम के भी अपने नियम हैं। आज हम पशुओं से भी नीचे गिर चुके हैं, क्योंकि पशुओं के भी कुछ नियम होते हैं, लेकिन मनुष्यों का कोई भी नियम नहीं है।

खाने की ही बात करें, तो चावल, जौ, मूंग की दाल आदि ये विशेष सात्त्विक हैं। यदि खाद नहीं हो, तो गेहूँ भी सात्त्विक होगा, लेकिन ये ज्यादा सात्त्विक हैं।

यह आयुर्वेद का विषय है, इसलिए ज्यादा नहीं बता पाऊँगा। परन्तु जितना पढ़ा, उतना बता रहा हूँ। सब्जियों में लौकी, तोरई, टिंडा आदि ऐसी कुछ सब्जियाँ हैं, जो गर्म नहीं होती, वे भी सात्त्विक हैं। मीठे फल सात्त्विक हैं और खट्टे में आँवला सात्त्विक है। वैसे सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। इनके बिना निर्माण ही नहीं हो सकता। केवल एक गुण से सृष्टि बनेगी ही नहीं, लेकिन यहाँ प्रधानता के आधार पर बांटा गया है।

जिसको खाने से, पढ़ने से, सुनने से और देखने से मन में शान्ति व संतुलन रहे और क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार आदि का अभाव रहे, तब जानना चाहिए कि इसमें सत्त्वगुण प्रधान है। यह संस्कारों से भी आता है और शरीर की प्रकृति (वात, पित्त व कफ) पर भी निर्भर करता है। पहले यह जानकारी नहीं थी, लेकिन प्रोफेसर श्री वसंत मदनसुरे ने कहा कि पित्त प्रकृति वाले लोगों को क्रोध बहुत आता है। वे सात्त्विक भोजन का सेवन करें, तो धीरे-धीरे शान्त हो जाएगा। जो रजोगुणी या तमोगुणी हैं या ऐसे भोजन की इच्छा करते हैं, वे कभी भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सारे नियम हैं।

संसार में जितनी भी बुराइयाँ हैं, उनके लिए शरीर में कोई हार्मोन उत्पन्न नहीं होता। लेकिन काम को उत्तेजित करने वाले हार्मोन्स स्वाभाविक रूप से शरीर में उत्पन्न होते हैं। हार्मोन्स न हों, तो सृष्टि ही नहीं चलेगी, इसलिए हार्मोन्स का होना आवश्यक है। लेकिन उन हार्मोन्स को संतुलित व नियन्त्रित करने के लिए सात्त्विक भोजन, सात्त्विक अध्ययन, सात्त्विक चिन्तन-मनन, सात्त्विक दर्शन एवं सात्त्विक श्रवण भी अनिवार्य है। उन हार्मोन्स के प्रभाव को दबाना चाहिए। कभी भी हमें हार्मोन्स परेशान कर रहे हों, तो उन्हें साक्षी-भाव से देखें और उस पर विचार बिल्कुल न करें। उसकी गहराई में बिल्कुल न जाएँ। जैसे हवन में घी डालने से अग्नि प्रज्ज्वलित होती जाती है, वैसे ही विषय की आग बढ़ती जाएगी। मनुस्मृति 2.94 में कहा गया है-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

भगवान् कृष्ण ने गीता में यह कहा है कि विषयों का चिन्तन करना छोड़ दो, अकेले मत रहो, किसी ऐसे के साथ रहो, जो सात्त्विक हो। अकेला या तो पशु रह सकता है या देवता। सामान्य व्यक्ति अकेला रहेगा, तो उसके मन में कुछ बुराइयाँ आयेंगी अथवा वह कुछ गलत सोचेगा। अगर किसी का बालक एकाकीपन चाहता है, तो उस पर दृष्टि बनाए रखें कि वह क्या करता है, क्या पढ़ता है, कैसे मित्रों में जाता है? लेकिन माता-पिता इस पर ध्यान नहीं देते। ऐसे माता-पिता क्या ध्यान देंगे, जिन्होंने स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया। आज विवाह होते ही सबसे पहले डबल बेड खरीदा जाता है। किसी भी प्राणी में ऐसा नहीं होता कि नर-मादा एक साथ सोते हों। ऋतुकाल के अलावा वे कभी पास नहीं रहते। आज से कुछ वर्ष पूर्व देखें, तो किसी के घर ऐसे बेड नहीं थे।

कई वर्ष पूर्व मैं एक शहर में गया। एक आर्य सज्जन ने नया मकान बनाया था। मैं और मेरे साथ में कुछ लोग थे। वे उनको बड़े प्रसन्न होकर दिखा रहे थे कि यह कमरा बेटे के लिए, यह कमरा मेरे लिए, यह कमरा अतिथि के लिए। उन्होंने कहा कि डबल बेड आज की आवश्यकता हो गई है। मुझे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ कि ये कैसी आवश्यकता? बच्चे हों, बूढ़े हों, युवा हों, सबके ऐसे ही बिस्तर मिलते हैं। होटल में जाओ, तो भी ऐसे बेड, किसी के घर जाओ, तो भी ऐसे बेड। कहीं दो बेड मिला लेंगे और कहीं तो संयुक्त ही होते हैं। यदि बेड अलग-अलग होते हैं, तो हम अलग-अलग कर लेते हैं।

महर्षि दयानन्द जब उदयपुर गए थे, तो महाराणा सज्जन सिंह को उपदेश दिया करते थे और महाराणा सज्जन सिंह प्रतिदिन उनसे पढ़ने आया करते थे, ध्यान एवं प्राणायाम भी सीखते थे। उन्होंने उनको उपदेश दिया था कि महारानी जी के कक्ष में मत सोइए और वहाँ सोने का कोई नियम बनाइए, ऋतुगामी होइए। तो महाराणा जी ने अपनी सारी दिनचर्या सुधार ली। जिस समय राजा लोग वैश्याएँ रखते थे, उस समय महाराणा को महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य का यह उपदेश दिया था।

गृहस्थ में ही व्यक्ति की परीक्षा होती है। गृहस्थियों को सबसे पहले पशु बनना सीखना चाहिए कि पशु कैसे रहते हैं। गाय का ऋतुकाल नहीं है, तो कोई साँड

कभी उसके पास नहीं जायेगा, लेकिन मनुष्यों का कोई नियम नहीं है। फिर ऐसे माता-पिता की सन्तानें ब्रह्मचर्य का पालन कैसे करेंगी और कैसे सात्त्विक होंगी? माता-पिता दोनों का खानपान खराब है, तमोगुण व रजोगुण के बिना तो उन्हें स्वाद ही नहीं आता। जब गर्भ में बालक है, तो भी घरों में झगड़े होते हैं। सारे दिन टी.वी. देखते हैं और टी.वी. में क्या देखा जाता है, वह सब जानते हैं, बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। सब नहीं, लेकिन अधिकांश लोगों की यही स्थिति है। विचार कीजिए कि इन सबका गर्भस्थ शिशु पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

अभिमन्यु ने चक्रव्यूह तोड़ना गर्भ में ही सीखा था। लेकिन आज के बच्चे गर्भ में यही सारी कामलीला, क्रोध, लड़ाई-झगड़ा और हिंसा करना सीखते हैं, क्योंकि टी.वी. पर यही सब देखा जाता है। घर में भी गाली-गलौज, मारपीट, चिड़चिड़ापन, तू-तू, मैं-मैं होती रहती है, तो क्या उनके बच्चे आज्ञाकारी बनेंगे? वह भी ऐसे ही बनेंगे। जब बच्चे बड़े होते हैं, तो कहते हैं कि बच्चा हमारी मानता नहीं। उन्होंने मानने वाला पैदा ही नहीं किया, जो उनकी माने।

जब बच्चा थोड़ा और बड़ा होता है, तो उसे सिखाया जाता है कि पढ़ो और आई.ए.एस., आई.पी.एस., डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर, उद्योगपति या राजनेता बनो और खूब धन कमाओ। धन कमाना सिखाया है, इसलिए वह धन ही कमाता है। लेकिन यह तो सिखाया नहीं कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, बड़ों का सम्मान करना चाहिए। इन सब बातों को सिखाना आपने महत्त्वपूर्ण ही नहीं समझा। आपने धन कमाने को महत्त्वपूर्ण समझा, अत: वह धन कमाता है और पैसे के लिए माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी सबकी हत्या कर सकता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि बच्चों को सिखाया गया है कि धन ही सर्वोपरि है, इस कारण सारे रिश्ते समाप्त हो जाते हैं।

काम और इसकी चंचलता ऐसी है कि जो पत्नी से पति की हत्या करवा देती है और पति से अपनी पत्नी की हत्या करवा देती है। एक काम की चंचलता ही है, जो भाई-बहन, गुरु-शिष्य और पिता-पुत्री के सम्बन्ध खराब करा देती है, छोटे बच्चों के साथ दुराचार करवाती है, हत्याएँ करवाती है। भगवान् मनु कहते हैं कि

एकाकी सोना चाहिए, बच्चे भी थोड़े बड़े हो जाएँ, तो उनको भी पास में नहीं सुलाना चाहिए। महर्षि मनु मनुस्मृति 2.180 में लिखते हैं- **एकः शयीत सर्वत्र।**

हमें याद है, जब हम छोटे थे, तो बच्चों के लिए छोटी-छोटी चारपाई हुआ करती थी। जिसको यू.पी. में खटोला बोलते हैं, जिस पर बच्चों को सुलाते थे। ऐसा नहीं है कि एक ही खाट पर चार-पाँच बच्चे वा बच्चियाँ सोया करते थे। एक बेड पर चार-पाँच बच्चे-बच्चियाँ सोयेंगे, तो आगे जाकर वे सब बिगड़ेंगे। अब वह परम्परा समाप्त हो गई। परिवार वालों ने और माता-पिता ने सारे नियम तोड़ दिये। जो मेरी इस बात को सुन रहे हैं, मैं उन सभी युवा गृहस्थों से आग्रह करता हूँ कि मिस्त्री बुलाकर अपने डबल बेड कटवा दें, उनके दो बनवा दें और अपने नियम बनाएँ। जो ब्रह्मचारी हैं, उनको तो बहुत ही ध्यान रखना चाहिए। महिलाओं से बातें करते समय ध्यान से नहीं देखना चाहिए।

जब मैं सर्विस करता था, तो मेरे कमरे में किसी भी महिला का प्रवेश वर्जित था। पड़ोस की छोटी-छोटी बच्चियाँ जरूर आ जाती थीं। एक बार वहाँ के लोगों ने कहा कि आप हमारे बच्चों को पढ़ा दो, तो मैंने कहा कि मैं बच्चों को पढ़ा सकता हूँ, लेकिन बच्चियों को नहीं पढ़ाऊँगा। उन्होंने कहा कि ये तो वैसे भी आती हैं और तीसरी-चौथी क्लास में ही हैं। फिर मैंने कहा- इनका नियमित आना मुझे कदापि स्वीकार नहीं है। वे लोग मुझसे बहुत स्नेह करते थे और बच्चे ऐसे थे कि जब मैं बस स्टैंड से उतरता, तो वहीं मिल जाते, कोई हाथ पकड़ता, तो कोई बैग पकड़ता। लेकिन नियमित बच्चियों का आना मुझे स्वीकार नहीं था, भले ही वे दूसरी कक्षा में ही क्यों न पढ़ती हों। अपने पति के साथ कोई महिला दवाई लेने आती थी, वह दोबारा कभी आवे, तो मैं पहचानता नहीं था कि वह महिला कौन थी। महात्मा लक्ष्मण को देखो, जिन्होंने सीता के कुण्डलों और बाजूबन्दों को पहचानने से इन्कार कर दिया था और कहा था कि मैंने उनके चेहरे को ध्यान से देखा ही नहीं। ये महान् आदर्श था।

वर्तमान में सहशिक्षा चल रही है, जो बहुत घातक है। बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा माता-पिता द्वारा ही दी जानी चाहिए। आचार्य चाणक्य व राजा भर्तृहरि

ने आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये चार चीजें पशु और मनुष्य में समान कही हैं। लेकिन आज इन चारों में से कोई भी समान नहीं रही, अगर ये भी समान हो जाएँ, तो हम कम से कम पशु तो बन जायेंगे। जैसे पशु भूख लगने पर ही खाता है, स्वाद के लिए नहीं खाता। भूख लगती है, तो खाता है और यदि भूख नहीं है, तो कुछ भी लाकर रख दो, वह नहीं खाएगा। शेर का पेट भरा है, तो शिकार नहीं करेगा। लेकिन हमें भूख नहीं लगी हो, तो भी यह महावीर हनुमान का प्रसाद है, यह गुलाबजामुन है, ऐसा कहकर खाते हैं। पार्टी में जाते हैं, तो वहाँ भी खाते हैं। इधर भी खायें, उधर भी खायें, सारे दिन बकरी की तरह चरते रहेंगे, हमारा कोई नियम नहीं है। गाय, बन्दर आदि को शराब पिलाना चाहें, तो वे कभी नहीं पीयेंगे, क्योंकि यह उनका भोजन नहीं है, लेकिन मनुष्य ने तो वह भी खा लिया, जो उसका भोजन ही नहीं है, माँस आदि तो और अलग है। माँस आदि के विषय में मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है-

विहंगमों में पतंग और जलचरों में नाव ही,
भोजनार्थ चतुष्पदों में चारपाई बच रही।

अर्थात् उड़ने वालों में पतंग को नहीं खाया, जल में रहने वालों में नाव को नहीं खाया और चौपायों में खाट को नहीं खाया, बाकी सब खा लिया। यानि आहार में हम पशुओं से भी नीचे गिर गए। सारे पक्षी अपने समय पर सो जाते हैं, अपने समय पर उठ जाते हैं, कोई उन्हें नहीं उठाता। लेकिन महानगरों में लोग रात को एक-एक, दो-दो बजे तक सोते हैं और सुबह 7-8 बजे तक सोते रहते हैं, कोई नियम नहीं है। पशु कमजोर को डराते हैं और बलवान् से डरते हैं और आदमी ऐसा है कि कमजोर से भी डर जाता है। भूतों से डर जाता है अर्थात् जो है ही नहीं, उससे भी डर जाता है।

आर्मी में अब महिलाओं की भी भर्ती हो रही है। न्यायालय इस विषय में बड़ा सक्रिय है, यह आश्चर्यजनक है। इसमें गुण कम दोष अधिक हैं। हाँ, उनकी टीम अलग हो और पुरुषों से सम्बन्ध नहीं हो, तो अच्छा है, परन्तु ऐसा नहीं हो रहा। मेरा मानना है कि चाहे वे कितनी भी चरित्रवान् क्यों न हो, लेकिन उनको पुरुषों

के साथ रखना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। किसी शत्रु के हाथ लग जाएँ, तो क्या होगा? वे कोई रानी पद्मिनी या रानी कर्मावती थोड़ी हैं, जो जौहर करें। वे क्या हाल करेंगे, क्या हाल कर सकते हैं, यह बात कोई नहीं सोचता। मानता हूँ, उनको युद्ध-कला आनी चाहिए, उनकी बटालियन होनी चाहिए और हो सकता है, ऐसा हो भी, क्योंकि उन्हें कहीं महिलाओं के साथ भी जाना पड़ सकता है। लेकिन व्यवस्था अलग-अलग ही होनी चाहिए। हमने यह सब पश्चिम से सीखा, हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों में ऐसा भर दिया गया कि हम जंगलियों की सन्तानें हैं, जो सिखाया सब गोरों ने सिखाया। हमारे यहाँ भी वीरांगनाएँ थीं- झाँसी की रानी, रानी दुर्गावती, महारानी कैकेयी आदि। उनका चरित्र बहुत महान् था।

हम सब ऐसे युग में जा रहे हैं, जहाँ अपना कुछ नहीं है। जहाँ धर्म, भारतीयता, सात्त्विकता और जितेन्द्रियता नहीं है, केवल लम्पटता है। किसी भी स्कूल में जाएँ तो देखें, क्या स्थिति है? देखा नहीं जाता। कभी मन होता था कि विश्वविद्यालयों, आई.आई.टी., शोध संस्थानों आदि में जाकर व्याख्यान देंगे, लेकिन मुझे तो वहाँ जाने लायक माहौल ही नहीं लगता।

ब्रह्मचारी को सात्त्विक भोजन लेना होता है। मिर्च एवं खटाई में आँवला और नींबू को छोड़कर अन्य सात्त्विक नहीं हैं। नींबू के विषय में आयुर्वेद के एक प्रोफेसर ने कहा था कि नींबू ब्रह्मचारी के लिए अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं, क्योंकि नींबू शरीर में जाकर क्षार में बदलता है। स्वामी ओमानन्द ने ब्रह्मचारी के लिए नमक का भी निषेध किया है। मैंने लगभग 15-20 वर्ष बिल्कुल नमक नहीं खाया, जिसका परिणाम बहुत सुखद रहा। पहले मेरा खान-पान ठीक नहीं था, सब स्वादिष्ट चाहिए था। तब बीमार भी बहुत रहता था, लेकिन जब से ब्रह्मचर्य के अनुकूल भोजन, व्यायाम आदि सीखा, तब से तीन वर्ष तक मैं बहुत निरोग रहा, दमा आदि भी गायब हो गया। मैंने स्वयं परिणाम देखा, इसलिए कह रहा हूँ। एक वैद्य ने कहा था कि नमक खाना है, तो सेंधा नमक ले सकते हैं। क्योंकि सेंधा नमक पेट के लिए ठीक रहता है।

प्राकृतिक स्वाद तो वास्तव में वह है, जिसमें कोई चीज न मिलाई गई हो।

अगर हम प्राकृतिक सब्जी का स्वाद लेना चाहते हैं, तो उसमें कुछ न मिलाएँ। होटलों में देखेंगे तो सब्जी कम होगी और मसाले ज्यादा होंगे और मालूम ही नहीं पड़ता कि क्या-क्या डाला गया है? जो भी हो रहा है, ब्रह्मचर्य के नितान्त प्रतिकूल और काम को भड़काने वाला हो रहा है। दृश्य, गाने, भोजन आदि सब काम को भड़काने वाले ही हैं और काम को भड़काने वाले ही सारे संस्कार हैं, इसलिए काम से सारा ब्रह्माण्ड प्रभावित हो रहा है। इसको नियन्त्रित करना वर्तमान समय में बहुत कठिन है। इसलिए नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना भी दुष्कर है। माना कि किसी ने ब्रह्मचर्यपालन की प्रतिज्ञा कर ली और मन में कोई अपवित्र भाव आवे, तो उस भाव को वहीं रोकने का प्रयास करें। मैंने भी प्रतिज्ञा की थी। मुझे अत्यन्त कामोत्तेजक विष दिया गया था। मुझे ही पता है कि मैंने अपने आप को कैसे नियन्त्रित रखा? मन भले ही परेशान हुआ हो, लेकिन शरीर पर प्रभाव नहीं होने दिया और कभी विषयों में भी नहीं भटका। बाद में एक भजन लिखा था, उसमें यह भी लिखा-

विषयों से बचता रहा, चाहे मन मेरा जलता रहा।
आई याद प्रभु तेरी, रक्षा मम होती रही॥

ईश्वर की उपासना हर परिस्थिति के लिए सबसे बड़ा हथियार है। इसलिए जो ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं या जो गृहस्थी भी संयमी रहना चाहते हैं, कुछ बड़ा कार्य करना चाहते हैं, उनको उपासना अवश्य करनी चाहिए। उपासना से उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सात्त्विक भोजन करने पर भी कुछ न कुछ गलत विचार आ ही सकते हैं, क्योंकि आत्मा का भोजन ईश्वर उपासना ही है और आज आत्मा को भोजन कोई नहीं दे रहा, कुछ विरले ही हैं, जो दे रहे हैं।

कुछ तो उपासना का ढोंग करते हैं, जिससे उनके शिष्य व भक्त लोग उनसे प्रभावित हों। विशेषकर साधना शिविरों में बहुत दिखावे की उपासना होती हैं। हमारे एक ट्रस्टी हैं, वे कहीं योग-शिविर से आए और बोले कि गुरुजी! वे आचार्य जी बहुत बड़े योगी हैं। मैंने पूछा कैसे मालूम पड़ा, तो वे बोले एक बार रात को लघुशंका के लिए उठा, तो वे चद्दर ओढ़कर ध्यान कर रहे थे और दूसरे दिन उठा,

तो भी उनको ऐसे ही देखा। मैंने कहा शिविरों में ऐसा ही नाटक होता है। क्योंकि शिविर में बहुत सारे भक्त होते हैं, किसी न किसी की दृष्टि पड़ेगी, वह सबसे चर्चा करेगा कि गुरु जी बहुत बड़े योगी हैं, जिससे दान-दक्षिणा अच्छी आएगी। वह दूसरे लोगों को भी प्रेरित करेगा कि उनके पास जाकर योग सीखो।

वे ही कथित योगी, जिनकी हमारे ट्रस्टी ने प्रशंसा की थी, हमारे पल्ले भी पड़ गए। हम और वे साथ-साथ यात्रा कर रहे थे। साधारण रेलगाड़ी का साधारण डिब्बा था और भीड़ भी बहुत थी। हमने सोचा कि गाड़ी चलना शुरू करेगी और अगला स्टेशन आयेगा, उससे पहले ही हम अपना मन्त्र-पाठ कर लेंगे, क्योंकि हम तो आँख बन्द करके बैठे रहेंगे और कहीं कोई आए और हमारे थैले उठाकर न ले जाए। चार आदमियों की सीट के किनारे पर जो रास्ता होता है, उसी धक्का-मुक्की में वे योगी जी घण्टे भर बैठे रहे और कभी मुस्कुरा रहे, कभी और कुछ कर रहे, ताकि सब लोग देखें। जब हम अपने गन्तव्य पर पहुँच गये, तो हम लोग एक ही कमरे में रुके हुए थे, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। लेकिन मैं प्रतिदिन पौने चार बजे उठ जाता था और जब तक मैं उनके साथ रहा, उनको जगाता था। मैंने उनसे पूछा कि आप शिविर में तो डेढ़ बजे, ढाई बजे भी समाधि में रहते हैं, लेकिन यहाँ प्रतिदिन मैं आपको उठाता हूँ, वहाँ नाटक क्यों करते हो? रेलगाड़ी में ध्यान के समय मुस्कुरा रहे थे, लोग आपको टक्कर मार रहे थे, क्या ध्यान लग रहा था? क्यों नाटक करते हो? ऐसे नाटक करने वाले आज बहुत हैं। वे योगी जी एक माताजी को घुमा रहे हैं, कहीं रेलवे स्टेशन पर जा रहे हैं, बन्द कमरे में दो-दो घंटे बात कर रहे हैं, ऐसे ब्रह्मचारी योगी थे।

मैं कभी किसी स्त्री से एकान्त में बात नहीं करता। मेरे गाँव में पड़ोस की एक बहन हैं, जो कन्या गुरुकुल में आचार्या हैं। वो मुझसे बहुत छोटी हैं और मुझे भैया कहती हैं। जब मैं कभी आर्यसमाज के कार्यक्रम में जाता हूँ, तो वो मुझसे मिलने आती हैं और कहती हैं कि आप मेरा शंका-समाधान करेंगे? लेकिन मैं कभी एकान्त में उनसे भी बात नहीं करता, जो मुझे भैया कहती हैं। मैं पड़ोसी के चबूतरे पर, जहाँ गली निकलती है। वहाँ दो खाट डालकर बैठता हूँ और उनके बच्चों को भी बुला लेता हूँ, वे खेलते रहते हैं और हम शंका-समाधान करते रहते हैं या घर

पर जहाँ हमारी माँ हों, वहाँ जाकर बात करते हैं। लेकिन बड़े-बड़े योगी शिष्याओं को बहुत पढ़ाते हैं, जिससे उन्हें अच्छी दक्षिणा भी मिल जाती है।

सर्वत्र ब्रह्मचर्य के प्रतिकूल हो रहा है। हमने ऋषि दयानन्द की बात नहीं मानी, इसलिए पतन हो गया और हो रहा है। चाहे कुछ भी हो, हमें मर्यादाओं का पालन करना होगा। हमारे यहाँ भी कई बार छात्राओं के पत्र आते हैं कि हम अपनी शंकाओं का समाधान कराना चाहते हैं। हम उनसे कहते हैं, विवाहित हो तो पति को लाओ, नहीं तो पिता वा भाई को लाओ, थोड़ी देर बात कर लेंगे। इन बातों का पालन बहुत आवश्यक है। समाचार चैनल देख रहे हैं और कोई गलत दृश्य आ गया, जो हमें नहीं देखना चाहिए, तो नजर इधर-उधर कर लेनी चाहिए। क्योंकि उससे गलत संस्कार बन जाते हैं। हम नहीं चाहते कि ऐसे संस्कार बनें। कुछ संस्कार ऐसे बनते हैं, जिनका हमें पता ही नहीं चलता।

भगवान् मनु ने कहा कि गुरु की पत्नी भी युवती हो, तो उनके भी चरण स्पर्श न करें। आज तो योगी व साधु महिलाओं से पैर दबवाते हैं और कन्याओं को पढ़ाते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी कन्या गुरुकुल चलाते हैं। हम कॉलेज के छात्र-छात्राओं की बात क्यों करें, स्वयं को भी देखें। जो विद्वान् हैं, वे नियमों का कितना पालन करते हैं? क्या वे स्वयं को महर्षि मनु व ऋषि दयानन्द से बड़े योगी मानते हैं। जब माताएँ आती थीं, तो ऋषि दयानन्द कहते थे कि अपने पतियों को भेज दो, हम उनको उपदेश दे देंगे, वे आपको सुना देंगे। क्या हमें ये सब नहीं सोचना चाहिए? धर्म की यह परिभाषा, भगवान् शिव ने केवल गृहस्थों के लिए बताई है, इस बात का ध्यान रखें। अगर भगवान् शिव केवल ब्रह्मचारियों के लिए लिखते, तो और भी कठोर नियम होते।

15. ब्रह्मचर्य के साधन

आइए! ब्रह्मचर्य की चर्चा को आगे बढ़ाते हैं। कभी-कभी हमें होटल में भी भोजन करना पड़ता है, लेकिन मेरी इच्छा नहीं होती है। मेरी इच्छा होती है कि चने या कुछ फल खा लूँ, लेकिन पाचनतन्त्र ऐसा नहीं है कि मैं सूखा भोजन कर सकूँ। पहले अगर मुझे कोई जबरदस्ती मिठाई भी खिला देता, तो मैं 500 रुपए दण्ड लेता था। यदि कोई मिठाई देने की कोशिश करता, तो मैं कहता था कि 500 रुपया और दो, क्योंकि मुझे वह दण्ड किसी को दान देना पड़ेगा, तो वह कहता कि नहीं-नहीं, आपको मिठाई नहीं खिलाऊँगा। किसी ने पूछा कि क्या कभी-कभी मिठाई खाई जा सकती है? मिठाई खाना ऐसा बुरा नहीं है, लेकिन आसक्ति नहीं होनी चाहिए। बाजार का तो नहीं खाना चाहिए, आपातकाल को छोड़कर। आज हमारे देश की यह दुर्दशा है कि कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं मिलती। अगर आपने बाजार से लेकर मावे (खोआ) की मिठाई खाई है, तो क्या आपको ध्यान है कि वह शुद्ध भी है वा नहीं, कहीं वह सिंथेटिक तो नहीं है? मिठाई कभी-कभी खाने में आ गई और ज्यादा खा ली, तो उसका प्रायश्चित्त भी कर लेना चाहिए, एक टाइम उपवास करके। कोई स्वादिष्ट भोजन होता है, तो ज्यादा ही खाते हैं। मैं नहीं कहता कि कोई प्रेम से खिला रहा है, तो उसका अपमान करो, लेकिन उसका दण्ड भी ले लो।

डायबिटीज मिठाई से नहीं होती, बल्कि शरीर में कैलोरी की मात्रा अधिक होने से होती है। डॉ. जितेन्द्र नागर ने यह बात बताई थी, जो डायबिटीज के बहुत बड़े डॉक्टर हैं। उन्होंने कहा कि डायबिटीज ज्यादा मिठाई खाने से नहीं, बल्कि ज्यादा कैलोरी खाने से होती है और अगर भोजन को नहीं पचाते, तो होती है। उन्होंने कहा कि अगर गुलाब जामुन खानी है, तो एक रोटी कम खाओ। भोजन में रोटी ही गिनी जाती है, बाकी चीजें नहीं गिनी जाती, वह कितना ही खा लो। ऐसा कहेंगे कि रोटी तो दो ही खाईं, भले ही रसगुल्ले 50 खा लें। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी तो क्या, स्वस्थ भी नहीं रहेगा, बीमार रहेगा। इसलिए काम पर नियन्त्रण करने के लिए अन्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना ही होगा। दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

आज के वातावरण में भोजन भी राजसी एवं तामसी है, क्योंकि सब खाद्य पदार्थों में केमिकल मिला है और उससे बचना हमारे हाथ में नहीं है। अगर हमें रोगों से बचना है और ब्रह्मचर्य का पालन करना है, तो बिना केमिकल वाले भोजन को प्राथमिकता देनी चाहिए, भले ही वह अधिक मूल्य में मिलता हो। उपासना करना और विषयों का चिन्तन न करना व मन में गलत विचार उठें, तो मन को दूसरी तरफ मोड़ने का प्रयास करना चाहिए। ठण्डे पदार्थों का सेवन व गर्म पदार्थों का सेवन न करना अथवा कम करना चाहिए। गर्म का तात्पर्य है, जो शरीर में उष्णता प्रदान करते हैं। सात्त्विक भोजन करना, सात्त्विक चर्चाएँ करना और स्वाध्याय आदि करना, ये ब्रह्मचर्य पालन में सहायक हैं।

परमात्मा ने कान इसलिए दिए हैं कि हम अच्छी बातें सुनें, लेकिन हमारे पास इनके लिए समय ही नहीं है, गप्प मारने के लिए समय अवश्य है और संसार में देखें, तो गालियाँ देने और पता नहीं क्या-क्या करने का समय है। आँखें दी कि हम सात्विक अध्ययन करें व अच्छा देखें, लेकिन नहीं पढ़ते, उपयोग नहीं करते, अपितु दुरुपयोग करते हैं। हर इन्द्रिय को शान्त और संतुलित अवस्था में रखें। प्रत्येक इन्द्रिय का एक-दूसरे से तालमेल रखें और सबका तालमेल व नियन्त्रण बुद्धि से होवे। लेकिन यदि किसी की बुद्धि ही खराब हो तो? महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि हर व्यक्ति का आत्मा सत्य-असत्य को जानने वाला है। लेकिन असत्य की ओर झुकने का सबसे पहला कारण अविद्या है। यदि कोई की कि हमें नहीं पता था। नहीं पता हो, तो भी बिजली मारेगी ही, वह थोड़ी कहेगी कि इसको नहीं पता था, इसलिए इसको छोड़ दो। नहीं पता था, तो पता करना चाहिए था कि स्विच ऑन है या ऑफ है? जिनको नहीं पता है, उनको पता करने के लिए बहुत सारी पुस्तकें हैं। लेकिन पुस्तकें पढ़ने का समय किसके पास है?

अखबार पढ़ने के लिए हम जितना समय लगाते हैं, उतना समय किसी अच्छे ग्रन्थ में लगा दें, तो हमारा जीवन बदल जाएगा। प्रतिदिन आधा घण्टा कोई आध्यात्मिक ग्रन्थ पढ़ें, तो मन के विचार बदलेंगे। मैं ऐसा नहीं कह रहा कि अखबार नहीं पढ़ना चाहिए, मैं भी पढ़ता हूँ। जो विशेष घटनाएँ होती हैं, उनको देखता हूँ और अब तो देखने की भी इच्छा कम होती है, क्योंकि जो भी घटनाएँ घट रही हैं,

सब दुर्भाग्यपूर्ण ही घट रही हैं। लेकिन उनकी जानकारी होनी चाहिए कि हम उस परिस्थिति में क्या कर सकते हैं? यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन एक-एक अक्षर पढ़कर समय खराब करना, यह कोई बुद्धिमानी नहीं है। मोबाइल में समय खराब करना, तो बिल्कुल भी बुद्धिमानी नहीं है।

हम अपने कमरे में हर वस्तु को सजाकर रखते हैं, यद्यपि यह किसी-किसी के घर में ही होता है, सबके घर में नहीं होता। किसी के घर तो किताबें कहीं पड़ी हैं, बर्तन कहीं पड़े हैं। रसोई के विषय में ऋषि दयानन्द ने कहा है कि मियाँ की रसोई में कहीं हांडी पड़ी है, कहीं कुछ पड़ा है। लेकिन कईयों के घर व्यवस्थित भी होते हैं। आजकल के बच्चे ऐसे हैं कि बालों को अच्छे से सवारेंगे, कपड़े साफ-सुथरे पहनेंगे, लेकिन इस जीवन को साफ-सुथरा नहीं रखते। इसको कैसे व्यवस्थित करें, कब क्या करें, कोई दिनचर्या नहीं है। संसार में बहुत सारे लोग हैं और मैं केवल भारत की ही बात करूँ, तो उसमें ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जिनकी दिनचर्या व्यवस्थित होगी। जो कर्मचारी वा अधिकारी हैं, उनको दिनचर्या इसलिए व्यवस्थित रखनी पड़ती है, क्योंकि उनको सुबह कार्यालय में जाना पड़ता है। उस दिनचर्या में स्वाध्याय और उपासना के लिए कोई स्थान नहीं है, लेकिन अखबार, टी.वी. व राजसी मनोरंजन के लिए स्थान अवश्य है।

कुछ लोग बैठे-बैठे गप्प ही लगाते रहते हैं, यह नहीं देख रहे कि खाली बैठे-बैठे उनकी आयु कम हो रही हैं। अगर हम पुस्तकालय से कोई पुस्तक 15 दिन के लिए लाए और 15 दिन बाद उस पुस्तक को ले लिया जायेगा। तो क्या हम पुस्तक को इधर-उधर पड़े रहने देंगे? उसको नहीं पढ़ेंगे? परमात्मा ने हमें यह जीवन दिया है, क्या हम अपने जीवन का सदुपयोग कर रहे हैं? अगर नहीं कर रहे हैं, तो उसके लिए वेद भगवान् ने कहा है कि शुभ और निष्काम कर्म करते हुए ही 100 वर्ष जियो। अर्थापत्ति से इसका अर्थ बनता है कि जो शुभ कर्म नहीं करना चाहता, उसे जीने का अधिकार नहीं है। मन को शुभ कार्य करने में, अच्छे अध्ययन-अध्यापन में, अच्छे मनन-चिन्तन में व्यस्त रखें। जिसको जीवन और सृष्टि की सच्चाई समझनी है, वे सबसे पहले अपनी बुद्धि को पवित्र व निष्पक्ष बनाएँ। कोई भी पुस्तक अपनी दृष्टि से न पढ़ें, अपने चश्मे से पढ़ने पर कोई पुस्तक कड़वी लग

सकती है और कड़वी लगने वाली पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' है, अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर उसको अवश्य पढ़ें।

महर्षि दयानन्द की 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' व 'आर्याभिविनय' पढ़ें और योगदर्शन पर महर्षि वेदव्यास का भाष्य तथा राजर्षि भोजदेव की वृत्ति पढ़ें। सांख्यदर्शन पढ़ें और डॉक्टर सुरेन्द्र कुमार की मनुस्मृति का भाष्य पढ़ें, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि मनुस्मृति में बहुत मिलावट है। संसार को सुखी करने के लिए, धर्म और कर्तव्यों की अच्छी तरह से पहचानने के लिए, चाहे वह गृहस्थ, ब्रह्मचारी, राजा, प्रजा, व्यापारी, आचार्य, शिष्य वा किसान हों, सबके लिए एकमात्र ग्रन्थ मनुस्मृति है। लेकिन मनुस्मृति में आधे से अधिक मिलावट के कारण उसने भारत को तोड़ दिया, समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसलिए डॉक्टर सुरेन्द्र कुमार का भाष्य ही पढ़ें। अगर कोई ब्रह्मचर्य के विषय में पढ़ना चाहे तो 'ब्रह्मचर्य के साधन' (स्वामी ओमानन्द) जो 11 भागों में है, एक 'ब्रह्मचर्य सन्देश' (डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार), 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' (स्वामी शिवानन्द) इतनी पर्याप्त हैं। बाकी सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें। ऐसा नहीं कि अपनी पढ़ाई छोड़कर इनको पढ़ने लग जाएँ। **अगर आप अपनी पढ़ाई में पीछे रहते हैं, तो मेरी बातों का आप पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा, मैं चाहता हूँ कि हर एक छात्र-छात्रा बहुत आगे बढ़े।** लेकिन मैं जानता हूँ कि वे बहुत समय गलत बातों में खराब करते हैं। उनको सही बातों के लिए आधा घण्टा निकालना चाहिए। गलत बातों से समय निकालें और सही बातों में जोड़ें, तो उनका जीवन बनेगा और अपनी पढ़ाई में भी आगे रहेंगे।

हम स्वयं आत्मा बनकर सभी इन्द्रियों पर शासन करने का प्रयास करें। विषयों को नियन्त्रित करेंगे, तो मन की तरफ जाएँगे और मन को नियन्त्रित करेंगे, तो आत्मा की तरफ जायेंगे और आत्मा से फिर परमात्मा की तरफ जायेंगे। मैं कोई योगी नहीं हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि मैंने आत्मा वा ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। किशोरावस्था में अच्छा अनुभव होता था, यह कह सकता हूँ। उस समय बिना किसी अलार्म घड़ी के पौने चार घण्टे ध्यान में बैठता था। मुझे अपने शरीर का भी भान प्रायः नहीं रहता था। वर्तमान में स्वास्थ्य ठीक न रहना आदि कई कारणों से मैं उतनी साधना नहीं कर पाता, जितनी करनी चाहिए। साधना के लिए

लगातार तीन घण्टे बैठा जाये, तो अच्छा रहता है। लेकिन ऋषि दयानन्द ने कहा है कि न्यून से न्यून एक घण्टा उपासना अवश्य करें। अगर केवल उपासना में ही ईश्वर का अनुभव होता है, तो वह उपासना ठीक नहीं है। उपासना का फल तभी माना जा सकता है, जब हमें प्रत्येक कार्य करते समय ईश्वर का अनुभव होता हो।

जब मैं सांचौर में रहता था, तो रविवार के दिन पेड़ के नीचे खाट डालकर लेट जाता था। पेड़ की एक-एक पत्ती को ध्यान से देखता था और उन पत्तियों को देखकर मैं ऐसा हो जाता था कि मुझे पता ही नहीं लगता था कि मैं कहाँ लेटा हूँ। उन पत्तियों में मुझे ईश्वर का दर्शन होता था कि ईश्वर ने पत्तियों को कैसे बनाया, क्या संरचना है? सृष्टि का कण-कण और प्रत्येक वह रचना, जिसे हम आँखों से देख सकते हैं, वह हमें ईश्वर का ही बोध कराती है। जिनको हम आँखों से नहीं देख सकते, जैसे एटम, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, बड़ी-बड़ी गैलेक्सियाँ, रश्मियाँ आदि, इन्हें हम बुद्धि से देख सकते हैं। ये सब हमें ईश्वर का ही बोध कराती हैं। इस बोध के लिए बुद्धि सात्त्विक होनी चाहिए। राजसी एवं तामसी बुद्धि कुछ भी बोध नहीं करा सकती।

उपासना उसी की सफल मानी जाती है, जो प्रतिक्षण ईश्वर का अनुभव करे और जो लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान, अनुकूलता-प्रतिकूलता में समभाव रखने वाला हो, उत्तेजित न हो या उत्तेजित न होने का प्रयास करे। परनिन्दा और आत्मप्रशंसा ये दोनों बहुत बुरी चीजें हैं। अगर मेरा किसी से विचार नहीं मिल रहा और कोई उसकी निन्दा करता है, तो बहुत आनन्द आता है। निन्दा का अर्थ सही बात बताना नहीं होता, सही बात बताना तो स्तुति कहलाती है। जो जैसा है उसको वैसा बोलना, स्तुति कहलाती है, लेकिन अन्धे को अन्धा कहना स्तुति नहीं है, जैसा कि सत्य की परिभाषा में बताया गया। लेकिन कोई यथार्थता बताकर हमें सजग कर रहा है, तो वह स्तुति कर रहा है, निन्दा नहीं। कभी-कभी कोई किसी की निन्दा करता है, तो वह हमें अच्छी लगती है और हम उसे बुरा नहीं मानते, तो इसका तात्पर्य है कि हम ठीक ढंग से उपासना नहीं करते। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

वस्तुतः जिसके जीवन में निष्पक्षता होती है, वही योगी होता है। ऋषि दयानन्द

ने सबसे पहले उनका खण्डन किया, जिनको वे अपना मानते थे। जैसे हिन्दू लोगों का, वे उन्हें हिन्दू नहीं, अपितु आर्य कहते थे। वे इस भूमि से प्यार करते थे, जो ऋषियों की भूमि है। वे यह भी कहा करते थे कि कभी यह भूमि ही नहीं, अपितु सारा भूमण्डल ही ऋषियों का रहा है। जैसे कोई किसान जब सिंचाई करता है, तो एक-एक क्यारी में पानी देता है, सब में एक साथ नहीं दे सकता। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास में अपनी निकटवर्ती क्यारी अर्थात् भारत भूमि की बुराइयों को साफ किया। फिर हिन्दुओं से जो थोड़े अलग मत हैं और जो वेद को नहीं मानते, उनकी बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। फिर उनसे दूर ईसाई मत था, क्योंकि उस समय उनका शासन था, उनको ठीक किया। अन्त में इस्लाम को ठीक करने का प्रयास किया, क्योंकि उनके जीवन में निष्पक्षता थी। आर्यसमाज की स्थापना लाहौर में डॉ. रहीम खाँ की कोठी पर हुई थी। यदि उनमें सम्प्रदायवाद होता, तो क्या वहाँ स्थापना होती? एक हिन्दू थे, उन्होंने खण्डन को देखकर निकाल दिया, तो वहाँ जाकर स्थापना की।

ऋषि दयानन्द ने धर्म की परिभाषा में ही लिखा- **'सत्याचरण अर्थात् पक्षपात रहित न्याय करना धर्म है।'** जो पक्षपातरहित हो, सबको समान दृष्टि से देखता हो, सबके प्रति संवेदना एवं सद्भावना रखता हो, वह योगी है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि दुष्ट को अपराधों का दण्ड न देता हो, वह न दे, तो किसी अन्य से दिलाएँ। ब्राह्मण और क्षत्रिय के योगी होने में एक अन्तर है, ब्राह्मण को दण्ड देने का अधिकार नहीं है, लेकिन क्षत्रिय को है। अगर क्षत्रिय दण्ड नहीं देगा, तो इसका अर्थ है कि वह योगी नहीं है, प्रजा का पालन कैसे करेगा? इसलिए योगी का व्यवहार बदलना चाहिए।

किसी की भी महिलाओं में आसक्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि महिलाएँ आदरणीया व पूज्या हैं। ऋषि दयानन्द ने तो चार साल की बच्ची के सामने भी सिर झुका दिया था कि यह मातृशक्ति है। वे महिलाओं के निन्दक नहीं थे, लेकिन मर्यादा रखते थे। जो मर्यादा न रखता हो, लोकैषणा, वित्तैषणा से किसी न किसी प्रकार से ग्रस्त हो, जो बात-बात में उत्तेजित हो जाता हो, इसका अर्थ है- वह उपासना ठीक ढंग से नहीं कर रहा है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा- **'समत्वं योग उच्यते'**

अर्थात् समत्व ही योग है, भगवान् पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा- **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। निरोध तभी हो सकता है, जब हमारे अन्दर सात्त्विकता का भाव होगा। जब सात्त्विकता का भाव होगा, तभी हमारा मन शान्त होगा और उसके बाद आत्मदर्शन होगा। मन अशान्त है, तो हमारी बुद्धि भी अशान्त रहेगी। पढ़ने वालों के लिए भी मन शान्त रहना अत्यावश्यक है। यदि किसी के मन में बहुत सारी उलझनें हैं, तो वह वैज्ञानिक नहीं बन सकता, क्योंकि उसका मन एकाग्र नहीं हो पाएगा।

इन सबका मूल मन्त्र है- इन्द्रियों पर नियन्त्रण। इन्द्रियों पर नियन्त्रण का मूल मन्त्र है- शुद्ध खानपान, शुद्ध विचार, शुद्ध आचार और इन सबका उपाय है- उपासना। अगर व्यक्ति उपासना नहीं करेगा, तो उसको रजोगुण व तमोगुण अच्छा लगेगा और सात्त्विक भोजन नहीं करेगा, तो उपासना में मन नहीं लगेगा, ये दोनों परस्पर आश्रित हैं। यह काम बहुत कठिन है, लेकिन जिस दिन धरती पर रहने वाले सभी लोगों में सत्त्वगुण प्रधान हो जाएगा, तो सभी लोग बुद्धिमान् हो जायेंगे, सभी सुखी होंगे और सभी में शान्ति होगी। कहीं आतंकवाद, लूटमार, हिंसा, ठगी व चोरी नहीं होगी, सभी प्रेम से रहेंगे। तब कहेंगे यह संसार की शम अवस्था है, संतुलित अवस्था है, सुख की अवस्था है और यही कल्याणकारिणी अवस्था है।

16. दान क्यों करें?

भगवान् शिव द्वारा निर्दिष्ट धर्म के अन्तिम लक्षण दान पर विचार करते हैं-

देने की भावना और परोपकार करना हर व्यक्ति का अनिवार्य कर्त्तव्य है। सांख्यदर्शन 1.31 में कहा है- **'संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'** अर्थात् संघात के परार्थ होने से पुरुष का अनुमान होता है। प्रकृति के संघात से, रश्मियों के संघात से और कणों के संघात से जो सृष्टि बनी है, वह परार्थ अर्थात् दूसरे के लिए है। सूर्य अपने लिए नहीं तप रहा है, चन्द्रमा अपने लिए चांदनी नहीं दे रहा है, जल अपने लिए नहीं है, अग्नि अपने लिए नहीं है, वायु अपने लिए नहीं है, भूमि अपने लिए नहीं है, वृक्ष अपने लिए नहीं है, सब दूसरों के लिए हैं। इससे पुरुष का अनुमान होता है कि किसी के लिये हैं। यदि कोई नहीं होता, तो यह सृष्टि किसके लिए बनती?

मान लेते हैं, हमने एक दरी बिछाई और वहाँ कोई न हो। कोई देखेगा, तो कहेगा कि किसी ने किसी के लिए दरी बिछाई। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो स्वयं के लिए भी बिछाते हैं। भोजन पकाने वाला स्वयं भी भोक्ता हो सकता है और दूसरों को भी खिला सकता है। लेकिन अगर भोजन बनाने वाला तृप्त हो, उसे भूख न हो अथवा भोजन कर चुका हो, फिर भी वह भोजन बना रहा हो, तो इसका तात्पर्य है कि वह किसी और के लिए बना रहा है। ऐसे ही सृष्टि में जितने भी पदार्थ बने हैं, एक तो उनको बनाने वाला है और दूसरा जिसके लिये वे बने हैं। जिसने सारी सृष्टि को बना दिया, वह निश्चित ही पूर्ण है। क्योंकि अपूर्ण शक्ति वाला सृष्टि निर्माण जैसे कार्य को नहीं कर सकता।

शरीर के अंगों में अन्य अंगों की अपेक्षा सम्भवत: दाँत की संरचना सबसे सरल होती है। एक डॉक्टर, जिसने सारे जीवन दाँतों की चिकित्सा की हो, बड़ी-बड़ी सर्जरी की हों। अगर उससे पूछें कि आप ईमानदारी से बताइए, क्या आप दांत के विषय में सब कुछ जानते हैं? तो वह बोलेगा कि सब कुछ तो नहीं जानता। एक स्थिति ऐसी आती है कि वह कहता है कि दाँत को उखाड़ना ही पड़ेगा, अब ठीक नहीं कर सकते। जो अपने को बहुत बुद्धिमान् मानता है, वह सारा जीवन पढ़ने के

बाद एक दाँत के विषय में भी पूरा नहीं जान सकता, भले ही दुनिया का कितना भी बड़ा डेंटिस्ट हो, सारे शरीर के विषय में पूरी तरह से कौन जान सकता है? चाहे कोई एनाटॉमी व फिजियोलॉजी का कितना भी बड़ा विद्वान् हो, लेकिन वह कहता है कि मैं सब कुछ नहीं जानता।

अब ब्रह्माण्ड को देखें, उसको पूरी तरह से कौन जान सकता है? लेकिन जो उसको बनाता है, वह सब कुछ जानता है और जिसको कोई नहीं जानता, उसे जो जानता है, वह ईश्वर है। जिसको कोई नहीं देख सकता, जो उसको देख सकता है, वह ईश्वर है। जिसको कोई नहीं बना सकता, जो उसको बना सकता है, वह ईश्वर है। ऐसा वह ईश्वर पूर्ण है। वेद में उसको पूर्णकाम व अकाम कहा है अर्थात् उसकी कोई कामना नहीं है। तो निश्चित ही उसने संसार को अपने लिए नहीं बनाया, किसी और के लिए बनाया है। सूर्य चन्द्रमा के लिए नहीं है, पृथ्वी सूर्य के लिए नहीं है, एक तारा दूसरे तारे के लिए नहीं है, अपितु उसके लिए है, जो इनका उपयोग करने में समर्थ है, वह चेतन है। इसलिए भगवान् कपिल कहते हैं कि इन सबको देखकर पुरुष का अनुमान होता है, क्योंकि यह सब अपने लिए नहीं है।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

नदी स्वयं अपना जल नहीं पीती, फसल स्वयं अपने लिए नहीं होती और बादल स्वयं अपने लिए नहीं बरसते। कोई तो है, जिसके लिए सब हो रहा है। ऋग्वेद 9.62.27 में भी कहा है कि-

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे। तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः॥

हे जीवात्मन्! ये सब लोक तेरे लिए ठहरे हुए हैं, तेरे लिए नदियाँ बहती हैं, सब तेरे लिए है। वैसे तो सब जीवों के लिए है, लेकिन जो मनुष्य अर्थात् विचारशील प्राणी है, उसका सबसे बड़ा दायित्व है। ईश्वर हमें संकेत दे रहे हैं कि इस सृष्टि को मैंने तुम्हारे लिए बनाया है, सृष्टि का कण-कण यह संकेत दे रहा है कि तुम भी किसी और के लिए जियो, अपने लिए नहीं। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में-

यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥

सूर्य प्रति सेकण्ड अपना 40 लाख टन वजन खो देता है अर्थात् प्रकाश व ऊष्मा आदि ऊर्जा में परिवर्तित कर देता है। इतना बड़ा तारा हमारे लिए जल रहा है। चन्द्रमा शीतलता वाली चाँदनी हमें देता है। वृक्ष हमारे लिए फल देते हैं, तो क्या हम केवल लेने वाले बनें? पशु-पक्षी तो नहीं समझ सकते, लेकिन हम पशु-पक्षियों से भी नीचे गिर गए। पशु-पक्षी अपने बच्चों की नि:स्वार्थ सेवा करते हैं और मनुष्य में माता-पिता में यह हो सकता है कि बच्चे बड़े होकर हमारी सेवा करेंगे और करने वाले करते भी हैं, लेकिन पशु-पक्षी नहीं करते और न ही उनको अपेक्षा होती है कि उनके बच्चे सेवा करें। लेकिन आज मनुष्य में अपने बच्चों के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम नहीं रहा। पिता अपना धनादि अपने बच्चों को नहीं देना चाहता। पति-पत्नी के भी अलग-अलग ताले हैं, अलग-अलग बैंक बैलेंस हैं। इसलिए कहते हैं कि लड़की को विवाह से पहले पढ़ाओ, ताकि वह स्वावलम्बी बन सके, यह किसने सिखाया? वेद में तो लिखा है- **'सम्राज्ञी भव'** (ऋग्वेद 10.85.46) अर्थात् वधू घर की रानी बने। राजा-रानी को किसने लड़ाया? पत्नी सोचे कि मुझे अलग से स्वावलम्बी होना चाहिए, पति पर निर्भर नहीं होना चाहिए। जिसके साथ विवाह हो, क्या उस पर भी निर्भर नहीं रहना चाहिए? और पति भी पत्नी को देता है, तो वह सोचता है कि मैं अहसान करता हूँ। क्या ऐसे परिवार होते हैं? एक समय था कि जब भाई-भाई एक राज्य को त्यागने के लिए विवाद कर रहे हैं और एक-दूसरे को राज करने के लिए कह रहे हैं, रामायण में देखें। महाभारत में दृश्य बदल जाता है।

ईश्वर इस सृष्टि के द्वारा सिखाता है कि जैसे मैंने परोपकार के लिए यह जगत् बनाया है, वैसे ही तुम भी जो करो, वह परोपकार के लिए करो। दान देना और त्याग करना सीखो। रामधारी सिंह दिनकर ने कविता लिखी है उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

दान जगत् का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।

एक रोज तो हमें स्वयं सब-कुछ देना पड़ता है॥

दान प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है, मनुष्य व्यर्थ डरता है और सोचता है कि मैं दे रहा हूँ, जबकि एक दिन तो उससे सब वैसे ही छीन लिया जाता है। फिर लिखते हैं-

किस पर करते कृपा यदि वृक्ष अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको सम्भाल क्यों रोक नहीं लेते हैं?

अर्थात् वृक्ष अगर फल दे रहा है, तो किस पर कृतज्ञता कर रहे हैं, क्या वे अपने फलों को गिरने से रोक सकते हैं? नहीं रोक सकते, क्योंकि देना व त्याग करना स्वाभाविक धर्म है।

देते तरु इसलिए कि रेशों में मन कीट समायें।
रहें डालियाँ स्वस्थ और फिर नए-नए फल आयें॥

वृक्ष इसलिए फल देते हैं कि कहीं उनकी डालियों पर लगे फल सड़ न जाएँ। डालियाँ स्वस्थ रहें, पके हुए फल नीचे गिर जाएँ और फिर नए-नए फल आएँ।

वेद में कहा हैं-

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। (ऋग्वेद 1.22.19)

विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा के महान् पालन आदि कर्मों को देखो और अपने व्रतों को सीखो। ईश्वर को देखकर अपने व्रतों का पालन करना सीखो, व्रतों पर चलना सीखो। ईश्वर का मात्र नाम लेने से कोई लाभ नहीं है, अपितु ईश्वर के कर्मों को देखकर उससे अपने कर्मों को सुधारने से ही लाभ होता है। इसी को ऋषि दयानन्द ने स्तुति कहा है। स्तुति का अर्थ होता है कि गुणों का कीर्तन करना और उससे अपने गुणों का सुधार करना। ईश्वर दाता है, तो हम भी दाता बनें, लेकिन देने की भावना बहुत कम लोगों में है। हिन्दू मुसलमान को दोष देता है, लेकिन वह यह नहीं देखता कि मुसलमान जकात के नाम पर 2.5% देता है, जहाँ तक मैंने सुना

है। लेकिन हिन्दू अपनी आय का कितना भाग देता है?

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की नियमावली में लिखा कि प्रत्येक आर्यसमाजी अपनी आय का न्यूनतम 100 वां अंश दान करे। आर्यसमाज के विशेष अवसरों पर कुछ दे, तो वह इससे अलग है। लेकिन कोई नहीं देता, विशेषकर जो बहुत बड़े दानदाता हैं, वे 100 वां अंश कभी नहीं देते। वे सोचते हैं कि मेरा इतना धन जा रहा है, लेकिन यह नहीं देखते कि 99 उनके पास बचे हैं। यह देखते हैं कि वह ₹100 महीने दे रहा है, तो मैं एक लाख कैसे दे दूँ? इसका उत्तर है कि तुम एक महीने का एक करोड़ कमाते हो और तुम्हारे पास 99 लाख बचते हैं। जो 10,000 कमाता है, वह 100 रूपये दे रहा है और उसके पास तो 9900 ही बचते हैं। उसके 9900 ज्यादा लग रहे हैं और अपने 99 लाख कम लग रहे हैं? हममें देने की भावना नहीं है, अगर प्रत्येक व्यक्ति 100वां अंश दान देता, तो आर्य समाजों में विवाह नहीं कराने पड़ते। बेमेल विवाह, भगोड़ा विवाह, अवैध विवाह इसलिए कराये जाते हैं, ताकि समाज में धन आ जाए। समाजों व मन्दिरों के शौचालयों, स्नानघरों, बिस्तरों को देखो और अपने घर के बिस्तर को देखो कि कितना अन्तर है। मन्दिर गन्दा और घर साफ, ऐसा क्यों? ऐसे कैसे होगा परोपकार का कार्य? परोपकार की भावना नहीं रही है। हमने ईश्वर से नहीं सीखा।

हमने यज्ञ कर लिया, लेकिन यज्ञ में बोले गए 'स्वाहा' का अर्थ समझा ही नहीं। 'स्वाहा' का अर्थ होता है- **'इदं न मम। ओम् अग्नये स्वाहा'** अर्थात् मैं अपनी आहुति या जो कुछ भी मेरे पास है, उसकी आहुति अग्नि स्वरूप परमात्मा को समर्पित करता हूँ। यह मेरा नहीं है, ईश्वर का है। तेरा तुझको अर्पण। हम जीवन भर 'स्वाहा-स्वाहा' करते रहे, लेकिन स्वाहा हमारे जीवन में नहीं आ पाया। 'इदं न मम', 'इदं न मम' कहते रहे, लेकिन जीवन में 'इदं न मम' नहीं आ पाया। लेकिन मरते समय तक तृष्णा नहीं गई। जो अपने कर्मचारी को अच्छी तरह से वेतन नहीं दे सकता, वह किसी भिक्षुक को क्या दान देगा? दान नि:स्वार्थ होना चाहिए। कुछ लोग दिखाने के लिए दान देते हैं। क्योंकि कर्मचारी को वेतन देने से तो कोई दिखावा होगा नहीं। कभी कार्यक्रम में दान दे देंगे, तो सब देखेंगे कि इतना दान दिया। कार्यक्रम में दीजिए ,लेकिन पहले अपने घर, कार्यालय, फैक्ट्री से प्रारम्भ

कीजिए। हमारे अन्दर देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए, क्योंकि **'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'** अर्थात् मनुष्य कभी धन से तृप्त नहीं हो सकता, इसलिए हम दें। यजुर्वेद 40.1 में लिखा है-

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

इसका भाव यह है कि सब कुछ ईश्वर का है, इसलिए त्यागपूर्वक भोग करें, यह धन प्रजापति परमात्मा का है। कुछ कहते हैं कि हमारा देने का सामर्थ ही नहीं है। सामर्थ्य बनाया जाता है, थोड़ा सा बचत करो। उनसे तुलना करो, जो हमसे ज्यादा दुःखी हैं। हम उनसे तुलना करके दुःखी होते रहते हैं, जो हमसे ज्यादा सुखी हैं। अपने से ज्यादा सुखी से तुलना करेंगे, तो दुःख होगा ही। अपने से नीचे गिरे व्यक्ति से तुलना करो और सोचो कि मुझ पर ईश्वर की कितनी कृपा है कि मैं इससे ठीक तो हूँ। हम देना सीखें, क्योंकि संसार में हमारा कुछ भी नहीं है। हम तो केवल डाकिए का काम करते हैं। डाकिया जब मनीऑर्डर लेकर आता है, तो हस्ताक्षर करवा लेता है और हमें हमारा धन दे जाता है। वह दान थोड़ी करता है, किसी ने भेजा है और उसने हमें दे दिया। वैसे ही हमें परमात्मा ने दिया और हम आगे दूसरों को दें, अपने धर्म का पालन करते हुए ।

17. सर्वश्रेष्ठ दान कौन सा है?

संसार कभी भी बिना त्याग के नहीं बन सकता और चल भी नहीं सकता। हम भौतिकी में देखें, यदि एक एटम किसी को इलेक्ट्रॉन न दे, तो दूसरा कहाँ से लेगा? और मॉलिक्यूल कैसे बनेंगे? लेना सब चाहते हैं, पर देना कोई नहीं चाहता, तो संसार कैसे चलेगा? अगर हम किसी से लेते हैं, तो किसी को देना भी चाहिए। अपरिग्रह, जो यम नामक योगांग में है, उसमें कहा है कि आवश्यकता से अधिक साधन संचय न करना। धन-संचय करते-करते सारी जिन्दगी बीत जाती है, लेकिन कभी इच्छा पूर्ण नहीं होती। अगर किसी को सम्पूर्ण पृथ्वी का भी शासन दे दिया जाए, तो भी उसका मन तृप्त नहीं होगा। वह चाहेगा कि मैं चन्द्रमा पर भी शासन करूँ। सुनते हैं कि नासा वाले चन्द्रमा पर प्लॉट बेच रहे हैं, यह कितना सही है, मैं नहीं जानता। लेकिन अगर बेच रहे हैं, तो क्या उनका इस धरती से पेट नहीं भरा? जो चन्द्रमा पर अधिकार जमा रहे हैं, क्योंकि उनके पास चन्द्रमा पर जाने का साधन है। यदि मेरे पास भीनमाल जाने का साधन है और मैं चला जाऊँ, तो इसका अर्थ यह थोड़ी है कि मैं भीनमाल का राजा हो गया।

आज इच्छाएँ कहाँ तक बढ़ गई हैं और बढ़ी हुई इच्छाएँ अशान्ति पैदा करती हैं। दान देने से प्रसन्नता व सन्तोष का अनुभव होता है। नहीं तो जब परमात्मा छीन लेगा, तब दु:ख होगा। जैसे मेरे पास दो कम्बल हैं और एक कम्बल कोई रात में चुरा ले जाए, तो मुझे दु:ख होगा। लेकिन मैं किसी ऐसे व्यक्ति को दे दूँ, जिसको ठण्ड लग रही है, तो सुख का अनुभव होगा। ऐसा सुख कौन चाहता है? स्वयं अशान्त रहना चाहते हैं और दूसरों को भी अशान्त करना चाहते हैं और करते भी हैं और फिर अशान्ति की तरंगें भी छोड़ते है? जो चैन से जी रहा है, उसको भी अशान्त करना, यह कितना बड़ा अपराध है?

कुछ लोग देने वाले होते हैं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि किसको देना चाहिए? नाचने-गाने वालों को देंगे, पार्टियों में खूब खर्चा करेंगे, माँस, मदिरा आदि पर व्यय करेंगे। सारे गाँव को भोजन कराएँगें, जिससे सब लोग प्रशंसा करें। दाता

तीन प्रकार के होते हैं- सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। तामसिक दाता दुराचारियों, नशेड़ियों और अपराधियों को दान देते हैं, उनकी सहायता करते हैं। राजसिक लोग लोकैषणा के लिए दान देते हैं, जैसे कहीं मकान बनवा दिया, धर्मशाला बनवा दी, स्कूल बनवा दिया, चिकित्सालय बनवा दिया और उस पर नाम भी चाहते हैं, यह राजसिक दान है।

मैंने एक बार देखा, एक स्थान पर कमरे के बाहर एक बोर्ड जैसा लगा रखा था, किसी व्यक्ति ने एक कमरा बनवाया और तीन बार में 1,02,000 रुपये दिये, एक बार में नहीं। उस पर नाम क्या, पूरा पत्र लिखा है, जिसमें दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची, मौसा-मौसी, ताऊ-ताई, बेटे, अपना और पत्नी आदि सभी सदस्यों के नामों की पूरी लिस्ट बनवा रखी है और नीचे लिखा है कि परमेश्वर की कृपा से मेरी धर्म में निरन्तर गति बनी रहे और आप सबको अभिवादन। अब जरा विचारें, यह कैसी भयंकर लोकैषणा है? कुछ सात्त्विक दानदाता होते हैं, जो नि:स्वार्थ भाव से देते हैं, उनका कोई स्वार्थ नहीं होता। हमारे यहाँ जो दान प्राप्त हुआ है, अधिकांश ऐसा ही हैं। श्री दीनदयाल गुप्ता के दान से हमने मकान बनवाया। उन्होंने यह नहीं कहा था कि प्लेट लगा दो, हमने कहा कि आपके नाम की प्लेट लगा देते हैं, क्या नाम लिखना है? एक बार शायद मना भी किया, फिर बोले कि डॉलर फाउण्डेशन। इसलिए हमने ही लिखा, उन्होंने नहीं कहा था। दूसरी ओर वे लोग हैं, जिन्होंने एक कमरे को तीन बार में दान देकर बनवाया और पूरा लेटर ही लिखवा दिया। जो सात्त्विक लोग होते हैं, वे बिना यश के दान देते हैं।

अब्दुल रहीम खान के बारे में सुनते हैं कि वह नित्य दान दिया करते थे और ऐसे देते थे कि देने वाले का कभी चेहरा नहीं देखते थे। किसी ने उनसे पूछा कि ऐसे दान देना कहाँ से सीखा कि जैसे-जैसे देने के लिए हाथ आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे नयन नीचे हो जाते हैं, आप नहीं देखते कि कौन ले रहा है? तो रहीम ने कहा-

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन॥

अर्थात् देने वाला तो ईश्वर है और लोग सोचते हैं कि रहीम दे रहा है, इसलिए लज्जित होकर मैं नेत्रों को नीचे कर लेता हूँ। यह सात्त्विकता है, ऐसे दानदाता विरले होते हैं। सात्त्विक दान भी बुद्धिपूर्वक देना चाहिए। रोगी की चिकित्सा करना, वस्त्रहीन को वस्त्र देना व भूखे को अन्न देना भी अच्छा दान है, और किसी नदी पार करना चाहने वाले को नाव में बैठाकर नदी पार करवा देना अच्छा कार्य है। भगवान् मनु ने कहा-

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। (मनु. 4.233)

सबसे बड़ा दान ब्रह्मदान अर्थात् वेदविद्या का दान है, क्योंकि वेदविद्या का दान जब किसी को दिया जाएगा, तो उसका जीवन बदल जाएगा। आपने किसी शराब पीने वाले को उसकी आर्थिक स्थिति देखकर हजार, दो हजार, दस हजार दान दे दिया, तो कुछ दिन में वह उसको भी खत्म कर देगा। क्यों न हम उसकी शराब छुड़ा दें, तो उसका जीवन और कितना धन बच जायेगा और वह स्वस्थ भी हो जायेगा, उसके परिवार में क्लेश भी नहीं रहेगा।

वेदविद्या एवं अध्यात्म विद्या का दान सबसे बड़ा दान है। वेदविद्या के नाम पर भी माँगने वाले बहुत हैं। वेद का नाम कभी भुलाया नहीं गया। वेद का अर्थ नहीं जानते थे, पर वेद-वेद सब करते थे, मन्त्रोच्चारण भी करते थे। मन्दिर पर ध्वजा चढ़ानी है या मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करनी है, तो मन्त्र बोला। भोजन करने का मन्त्र, नहाने का मन्त्र, यात्रा करने का मन्त्र, सबके मन्त्र बना दिये, लेकिन मन्त्रों का अर्थ किसी ने नहीं जाना। कहीं-कहीं गुरुकुलों व वेद-विद्यालयों में केवल वेदपाठ सिखाया जाता है और आर्यसमाज में अर्थ भी सिखाया जाता है, लेकिन कितने लोग वेद के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं? जिसको महर्षि दयानन्द ने कहा **'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है'** तथा भगवान् मनु ने कहा **'सर्वज्ञानमयो हि सः'** वह वेद क्या है, कितने लोग जानते हैं? कहना तो बहुत सरल है कि वेद सम्पूर्ण ज्ञानमय है, भगवान् मनु ने कहा और हमने भी प्रवचन में कह दिया, क्या बस इतने से बात बन गई?

महर्षि व्यास ने ब्रह्मसूत्र 1.1.4 में कहा – **तत्तु समन्वयात्।**

अर्थात वेद ईश्वरीय इसलिए है, क्योंकि वेद और सृष्टि में समन्वय है। जो वेद में है, वही सृष्टि में है और जो सृष्टि में है, वही वेद में है। भगवान् व्यास ने तो शास्त्र अर्थात् वेद को पूरी तरह समझ लिया था। वेद को ही शास्त्र कहा गया, दूसरे शास्त्र तो बाद में बने। शास्त्र का अर्थ होता है, जो जीने की शिक्षा देता है, शासन करता है, अनुशासन सिखाता है। सम्पूर्ण अनुशासन और सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का शासन वेद से ही प्रारम्भ हुआ, वेद से ही होता है और वेद से ही होगा। इसलिए उसे ही शास्त्र कहा है। भगवान् व्यास महाराज को पता था कि इस सृष्टि में क्या था ? यह सूत्र बता रहा है कि वे सृष्टि के कण-कण को जानते थे, सृष्टि की रश्मि-रश्मि को जानते थे। अपने समय के इस भूमण्डल के सबसे बड़े ऋषि माने जाते थे और वे वेद के प्रत्येक मन्त्र को पूरी तरह जानते थे तथा हर प्रकार के अर्थ जाना करते थे।

लोग हमसे कहते हैं कि तीन प्रकार के अर्थ नहीं हो सकते। वे लोग नहीं जानते कि तीन प्रकार के नहीं, बल्कि तीस प्रकार के अर्थ भी हो सकते हैं, क्योंकि आधिदैविक भी कई प्रकार का हो सकता है। आधिदैविक कहीं विद्युत् को लेकर हो सकता है, तो कहीं चुम्बक को लेकर हो सकता है, कहीं ऊष्मा को लेकर हो सकता है, कहीं प्रकाश को लेकर हो सकता है। वैसे ही आधिभौतिक में कहीं आचार्य और शिष्य, कहीं परिवार, कहीं राजा और प्रजा को लेकर हो सकता है, तो कहीं सेनापति को लेकर हो सकता है।

श्री विनीत कुमार ने बताया कि आचार्य सनत्कुमार ने गायत्री मन्त्र के 15 प्रकार के अर्थ किये हैं, अच्छा लगा। लोग हमारे पीछे इसलिए पड़े हुए हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि मन्त्र का अर्थ तीन प्रकार का नहीं हो सकता, बल्कि एक ही प्रकार का होगा। कोई तो है, जो हमारी बात पर विचार करके गायत्री मन्त्र का 15 प्रकार का अर्थ कर रहा है। मेरे पास तो समय नहीं है कि 15 प्रकार के अर्थ करूँ, लेकिन कोई विद्वान् तो आया, जिसने यह स्वीकार किया और करके भी दिखाया कि वेदमन्त्र के अर्थ कई प्रकार के हो सकते हैं। वेद में लगभग बीस हजार मन्त्र हैं, तो

क्या हम एक प्रकार का अर्थ करके यह कह देंगे कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान इसमें समा गया, कितनी बड़ी बुद्धिहीनता की बात है। विद्वान् मेरे पीछे इस मुद्दे पर खूब विवाद करते हैं, कई लोगों ने अपने शिष्यों को यह कार्य सौंप रखा है। क्योंकि वे यही नहीं जानते कि वेद क्या हैं?

भगवान् मनु कहते हैं कि वेद का दान सब दानों में सबसे विशेष है। वेद दान, वेदपाठ का करना मात्र नहीं है, वेद के नाम पर कुछ कथाएँ करना मात्र नहीं है, वह भी अच्छा है। लेकिन वास्तव में वेदविद्या का दान वह है, जिसमें हम वेद के रहस्यों को सम्पूर्ण दुनिया को समझाएँ और उन रहस्यों को समझाने वाले को अभी तक लोग समझ नहीं पाए। हमने प्रयास किया, पहली बार यह व्रत लिया और घोषणा की कि **'वेद ईश्वरीय और सर्वज्ञानमय'** है, इसे हम किसी भी मंच पर सिद्ध कर सकते हैं। हमसे पहले ऋषि दयानन्द ने घोषणा की कि **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'**। वे हमें संकेत देकर चले गए। लेकिन उसके बाद क्या हुआ, हम उन्हें क्यों भूल गए?

समाज, राष्ट्र व मानवता के सब कार्यक्रम अच्छे हैं, लेकिन वेदज्ञान से बढ़कर मानवता को बचाने के लिए दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। क्योंकि मानव समाज का सबसे बड़ा शत्रु कोई है, तो वह अज्ञान है। व्यक्ति अज्ञानी होने के कारण ही अन्याय करता है। संसार की दुर्दशा के तीन कारण हैं- अज्ञान, अन्याय और अभाव। सम्पूर्ण विश्व में कहीं अभाव देखा जाता है, कहीं गरीबी देखी जाती है, कहीं भुखमरी देखी जाती है, तो उसका मूल कारण अन्याय है। उनके कर्म भी हैं, लेकिन समाज और राज व्यवस्थाओं के अन्याय भी हैं, जिन्होंने दूसरों के भाग्य दबा रखे हैं। जो दूसरों की लाशों पर खड़े होकर अट्टहास करते हैं, किसी को भूखा देखकर प्रसन्न होते हैं।

ऐसे लोग अधिक हैं, जिन्हें आज बड़ा माना जाता है। जो समाज का शोषण कर रहे हैं, किसी भी प्रकार से समाज को दु:ख दे रहे हैं, दुर्बलों को दु:खी कर रहे हैं, वे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। वे इतना ही जानते हैं कि वे बड़े पूंजीपति व शक्तिशाली बन रहे हैं, लेकिन जो शक्तिशाली व पूंजीपति बने, वे भी

चले गए। कोई धरती पर सदा नहीं रहा, इस बात को वे नहीं जानते और अगर जानते हैं, तो उनका अहंकार उनको मानने नहीं देता। उनको धन, पद, बल, सत्ता का इतना अहंकार है कि वे यह सोचते भी नहीं कि जैसे यह किसी व्यक्ति की अंत्येष्टि के लिए यात्रा निकल रही है, ऐसे ही मेरी भी निकलेगी। वे यह नहीं सोचते कि जैसे किसी को चिता में जलाया जा रहा है, वैसे ही मुझे भी जलाया जायेगा या जैसे किसी को कब्र में दफनाया जा रहा है, वैसे मुझे भी दफनाया जायेगा। काश! उन्हें यह ज्ञान होता, तो वे ऐसा नहीं करते, यद्यपि ज्ञान है, लेकिन उनका अहंकार उन्हें वास्तविकता स्वीकार नहीं करने देता। रावण जानता था कि वो राम से नहीं जीत सकता, क्योंकि कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे कई योद्धा चले गए थे। लेकिन उसका अहंकार उसको मानने नहीं दे रहा था कि वह हार जायेगा।

वास्तविकता को जानना और संसार को वास्तविकता का बोध कराना, यह संसार का सबसे बड़ा दान है, सबसे बड़ा कर्तव्य है और उसके लिए दान देना, संसार का सबसे पवित्र दान है। **दान की सबसे उच्च पराकाष्ठा यही है कि वैदिक ज्ञान-विज्ञान के लिए दान दिया जाए।** कोई यह भी सोचेगा कि अपने लिए मांग रहे हैं। एक ने हमें लिखा कि आपको ज्ञान है, लेकिन आप यह सोचते हैं कि केवल आपको ही ज्ञान है, बाकी सब मूर्ख हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा ही एक बार भीनमाल में जिला न्यायाधीश महोदय ने भी कह दिया। कृष्णजन्माष्टमी थी, तो मैंने श्रीकृष्ण पर बोला और वे बाद में राधा व रासलीला पर व्याख्यान करने लगे, तो मैंने उनकी बात का खण्डन किया। फिर वे बोलने लगे कि स्वामी जी! सबका अपना-अपना सत्य होना चाहिए, यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं ही सत्य हूँ। तो मैंने कहा- सुनिए जज साहब! अगर ऐसा मान लेंगे, तो आप कोर्ट में न्याय नहीं कर पाएँगे। दोनों सही नहीं हो सकते, सही एक ही होगा। मैं अहंकारवश यह नहीं कहता कि मैं ही सत्य हूँ, मैं महर्षि याज्ञवल्क्य की परम्परा का अनुगामी हूँ तथा उनका अनुयायी हूँ।

राजा जनक ने अपनी सभा में यह घोषणा की थी कि जो सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी होगा, उसे एक हजार गायें दी जायेंगी और हर गाय के एक सींग पर दस तोला सोना लगा होगा, तो एक गाय के दोनों सींगों पर बीस तोला सोना हो गया। सम्पूर्ण

भूमण्डल के सारे ब्रह्मज्ञानी बुलाए गये, अब यह कौन कहे कि मैं सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी हूँ। जब कोई खड़ा नहीं हुआ, तो महर्षि याज्ञवल्क्य खड़े हुए और अपने शिष्य से बोले कि इन गायों को हाँक के ले चलो। तत्पश्चात् एक महर्षि खड़े होकर बोले कि ऐसे कैसे ले जाओगे, क्या आप स्वयं को सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी मानते हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, मैंने यह नहीं कहा कि मैं सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी हूँ। फिर वे बोले कि आप गाय कैसे ले जा सकते हैं? क्योंकि महाराज की यही तो शर्त है। याज्ञवल्क्य ने कहा कि भले ही शर्त हो, मुझे तो गायों की आवश्यकता है, इसलिए ले जा रहा हूँ। फिर वे बोले आप ऐसे नहीं ले जा सकते, आपको हमारे प्रश्नों का उत्तर देना पड़ेगा। तो याज्ञवल्क्य ने कहा कि आप प्रश्न पूछिए। वह पूछते गये, पूछते गये और महर्षि याज्ञवल्क्य उत्तर देते गए। अन्त में गार्गी उठी, जो एक ब्रह्मचारिणी थी, उन्होंने कहा कि इस सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य जैसा कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं है और अन्ततः वे गायों को ले गए।

मैं तो महर्षि याज्ञवल्क्य की परम्परा का हूँ, मैं यह नहीं कह रहा कि मैं ही सब जानता हूँ, लेकिन अगर आपको कुछ पूछना है, तो आप पूछ सकते हैं। मैं उत्तर देने के लिए तैयार हूँ, क्योंकि उत्तर देना मेरा उत्तरदायित्व है। जो ऐसा कह रहे हैं कि मैं सबको मूर्ख मान रहा हूँ, उनका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मैंने ऐसा कभी नहीं कहा। लेकिन अगर कोई यह सोचता है कि मेरी बात कहीं गलत है, तो वह भी प्रश्न पूछ सकता है। मैं तो इतना ही कर सकता हूँ, जो महर्षि याज्ञवल्क्य ने किया था।

दान के कई रूप हैं, ऐसा नहीं है कि सब वेदविज्ञान के लिए ही दान दें, आज समाज को सबके लिए धन की जरूरत है। लेकिन जब तक संसार में वेदविज्ञान और वैदिक ज्ञान नहीं होगा, तब तक संसार दुःखी रहेगा। एक भिखारी को दान देने पर हमें रोकते हैं कि दान न देकर भोजन दे दो, यह अच्छी बात है और उन्हें काम करना सिखा दिया जाए, यह भी अच्छी बात है। मेरे पास इतना समय नहीं है। अगर किसी के पास काम हो, तो उनको काम करना सिखाया जाए व काम पर लगाया जाए। वैसे ही अगर संसार से अज्ञान मिटा दिया जाए, तो आज किसी भी प्रकार के जितने विवाद हैं और जितनी भी समस्याएँ हैं, वे सब समाप्त हो जायेंगी, क्योंकि

उन सबका मूल अज्ञान है। ज्ञान का प्रकाश इन विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों से नहीं होगा, ये अधूरा ज्ञान पढ़ा रहे हैं। डॉक्टर, एम.बी.बी.एस., एम.डी., एम.एस., एम.सी.एच. आदि डिग्रियाँ लेकर क्या करते हैं? गुर्दे बेचने वाले कौन हैं? पढ़े-लिखे या अनपढ़?

आज कोई भी शिक्षा यह नहीं सिखाती कि तुम्हें चोरी नहीं करनी, बेईमानी नहीं करनी, असत्य नहीं बोलना, हिंसा नहीं करनी। आज की शिक्षा तो माँस, मछली, अण्डे खाने के लिए प्रेरित करती है। हैकर भी तो शिक्षित ही होते हैं, शिक्षा ने यह भी नहीं सिखाया कि क्यों किसी के बैंक से पैसे निकाल रहे हो। मैसेज आता है कि आपकी सिम बन्द होने वाली है, यह डॉक्यूमेंट तुरन्त लाइए। एक बार नरेश के पास कॉल आया, तो उसने कहा कि इससे अच्छा तो सड़क पर भीख माँग लो। ये सब पढ़े-लिखे ही तो हैं। इस शिक्षा ने मानव को मानव से दूर कर दिया। इस शिक्षा ने परिवारों में पति और पत्नी को, भाई और बहन को, पिता और पुत्र को दूर कर दिया है। वास्तव में यह शिक्षा नहीं, किन्तु कुशिक्षा है। भले ही आप बहुत बड़े डॉक्टर, आई.ए.एस., आई.पी.एस., उद्योगपति वा राजनेता बन जाएँ, लेकिन वेदज्ञान के अभाव में न तो आप स्वयं शान्ति से रह पाएँगे और न ही दूसरों को शान्ति से रहने देंगे। कहीं सूखा पड़ रहा है, कहीं बाढ़ आ रही है, कहीं आग लग रही है, यह सब आज की कुशिक्षा की देन है। इसलिए मैं कहता हूँ कि वेदविद्या का दान सबसे बड़ा दान है। क्योंकि वेदविद्या का दान इस ब्रह्माण्ड को एक परिवार मानना सिखाता है, केवल देश को नहीं या केवल पृथ्वी को नहीं, अपितु सारे ब्रह्माण्ड को।

वेद का दान सृष्टि में अपने अस्तित्व को बताता है और अपने स्तर को बताता है। हमारा अस्तित्व व स्वरूप क्या है, यह भी बताता है। वेद का विज्ञान हमें यह सिखाता है कि सृष्टि का सृजेता, संचालक कोई और है, हम सृष्टि के स्वामी नहीं हैं। वेद का ज्ञान वास्तविकता का दर्शन कराता है, इसलिए वेदविद्या का दान सर्वोपरि दान है। अन्य दान भी दान हैं, लेकिन गौण हैं। जैसे एक व्यक्ति प्यास से प्राण त्याग रहा है और उसके पास कपड़े भी नहीं है, मकान भी नहीं है, आने जाने के लिए कोई साधन भी नहीं है, तो सबसे पहला दान जल का दान करना है, क्योंकि जल

पीकर वह जीवित रह जाएगा, तो अन्य साधन भी जुटा सकता है। वस्त्र देना भी दान है, वाहन देना भी दान है, मकान देना भी दान है, लेकिन सबसे पहला व सबसे मुख्य दान उसे पानी देना है। आज मानव आत्मज्ञान के लिए प्यासा है। वैसे वह ये कहता ही नहीं कि मैं प्यासा हूँ, वह कहता है कि मेरा पेट भरा है, मैं बहुत जानता हूँ। प्यासा आदमी स्वयं को प्यासा न माने, और भूखा आदमी भूखा न माने, रोगी आदमी स्वयं को रोगी न माने और यदि रोग को ही दवा मान ले, तो उसका कोई इलाज सम्भव नहीं है।

आज भी संसार में बहुत से लोग ज्ञान के प्यासे हैं, बहुत युवक हमारे पास आना चाहते हैं, लेकिन आज तक किसी ने यह नहीं कहा कि हम आपका सहयोग करेंगे, आप रिसर्च सेंटर बनाइए। कोई यह कहता है कि आप यूनिवर्सिटी वा रिसर्च सेंटर बना लीजिए, लेकिन उसके लिए वे क्या दे सकते हैं, यह कोई नहीं कहता? क्योंकि हमारे यहाँ दान धर्म रहा ही नहीं। इसलिए हम इस प्रकृति से, सृष्टि से, ईश्वर से सीखें कि दान देना स्वाभाविक धर्म है। सूर्य, चन्द्र, गैलेक्सियाँ, पशु, पक्षी, पौधे, वृक्ष आदि सब दान दे रहे हैं, तो हम भी दान देना सीखें।

यहाँ भगवान् शिव द्वारा बताए गृहस्थ धर्म का उपदेश समाप्त होता है। अगर धर्म के इन पाँच लक्षणों को व्यक्ति अपने जीवन में धारण कर ले, तो वह सच्चा शिवभक्त होगा, मन्दिर में जाकर दूध, पानी चढ़ाने से शिवभक्त नहीं होगा। दूध किसी भूखे बच्चे को पिला देते तो दान होता, नाले में बहाने से दान नहीं होगा।

एक तो भगवान् शिव वह हैं, जिन्होंने सृष्टि को बनाया और जो निराकार भी हैं। जिसके बहुत से नाम हैं, जिनमें 'ओम्' मुख्य नाम है। एक भगवान् शिव, जो हमारे देव वर्ग के महापुरुष हुए, उन्हीं ऐतिहासिक महापुरुष भगवान् शिव ने यह धर्म बताया। अगर उन शिव की भी पूजा करनी है, तो इन धर्मों का पालन करने का प्रयास करें।

परिशिष्ट

1. गृहस्थ धर्म का स्वरूप

श्रीमहेश्वर उवाच-

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥ 25॥

श्रीमहेश्वर ने कहा- देवी! किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना गृहस्थ-आश्रम का उत्तम धर्म है॥ 25॥

परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम्।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम्॥ 26॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसम्भवः॥ 27॥

(महाभारत अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अध्याय 141)

परायी स्त्री के संसर्ग से दूर रहना, धरोहर और स्त्री की रक्षा करना, बिना दिये किसी की वस्तु न लेना तथा माँस और मदिरा को त्याग देना, ये धर्म के पाँच भेद हैं, जो सुख की प्राप्ति कराने वाले हैं। इनमें से एक-एक धर्म की अनेक शाखाएँ हैं। धर्म को श्रेष्ठ मानने वाले मनुष्यों को चाहिये कि वे पुण्यप्रद धर्म का पालन अवश्य करें॥ 26-27॥

भगवान् शिव के इन वचनों पर सभी गृहस्थ शिवभक्त कहाने वाले गम्भीरता से विचारें कि क्या आप सभी जीवों के प्रति दया व उनसे प्रेम करते हैं। क्या शिव मन्दिरों में अपने ही कथित दलित भाईयों के प्रति आत्मिक प्रेम व समानता का भाव रखते हैं? क्या आप जीवन भर माँस, मछली, अण्डा व सभी प्रकार के नशीले पदार्थों के परित्याग की प्रतिज्ञा करेंगे? क्या आप अश्लील कथाओं, मोबाइल, इण्टरनेट व पत्र-पत्रिकाओं की अश्लीलता से बचने का व्रत लेंगे? क्या आप सभी

परायी स्त्रियों के प्रति कुदृष्टिपात से बच पायेंगे ? क्या आप सत्य ही बोलते व उस पर आचरण करते हैं ? क्या आप चोरी, तस्करी, रिश्वत, वस्तुओं में मिलावट तथा किसी के अधिकार छीनने की प्रवृत्ति का त्याग करेंगे ? तथा अपने जीवन में श्रेष्ठ वेदानुकूल कार्यों में दान व त्याग की भावना जगायेंगे ? यदि नहीं, तो आपकी शिवभक्ति सर्वथा निरर्थक है, अज्ञानतापूर्ण है।

2. ब्राह्मण का धर्म

स्वाध्यायो यजनं दानं तस्य धर्म इति स्थितिः।
कर्माण्यध्यापनं चैव याजनं च प्रतिग्रहः॥
सत्यं शान्तिस्तपः शौचं तस्य धर्मः सनातनः।

वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ और दान ब्राह्मण का धर्म है, यह शास्त्र का निर्णय है। वेदों का पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना, ये सभी ब्राह्मण के कर्म हैं। सत्य, मनोनिग्रह, तप और बाहरी व आन्तरिक पवित्रता, यह उसका सनातन धर्म है।

विक्रयो रसधान्यानां ब्राह्मणस्य विगर्हितः॥

अर्थात् रस और धान्य(अनाज) का विक्रय करना ब्राह्मण के लिये निन्दित है।

(अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अध्याय 141,गीताप्रेस)

पाठक यहाँ भगवान् शिव के वचनों पर विचारे करें, तो स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि कर्म व योग्यता से होते हैं। इसको आगे स्पष्ट करेंगे। यहाँ यह चिन्तनीय है कि क्या शिवभक्त कहाने वाला ब्राह्मण आज वेदादि शास्त्रों के महान् ज्ञानविज्ञान को समझता है अथवा भांग पीने में मस्त है? क्या वह दान देना भी जानता है अथवा लेना ही जानता है? क्या वह मनसा, वाचा व कर्मणा सत्य का पालन करने वाला और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला है? क्या वह धर्म के मार्ग में सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्दों को सहन करने रूपी तप को करता है? क्या वह मन-वचन-कर्म से पवित्र आचरण करता है? क्या कोई स्वयं को ब्राह्मण अथवा साधु-संन्यासी कहने वाला व्यापार व उद्योग आदि वैश्य-कर्मों से दूर है? यदि उसमें ये गुण नहीं है, तो वह भगवान् शिव की दृष्टि में ब्राह्मण नहीं हो सकता। आइए! कथित ब्राह्मण बन्धुओ! सच्चे ब्राह्मण बनने हेतु प्रयास करने का व्रत लें।

3. क्षत्रिय का धर्म

क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः ॥ 47 ॥

अर्थात् क्षत्रिय का सबसे पहला धर्म है- प्रजा का पालन करना।

तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ 49 ॥

यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा।
भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ॥ 50 ॥

सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः।
व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥ 51 ॥

(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 141, गीताप्रेस)

राजा का परम धर्म है- इन्द्रियसंयम, वेदों का स्वाध्याय, अग्निहोत्रकर्म, दान, अध्ययन, यज्ञोपवीत-धारण, यज्ञानुष्ठान, धार्मिक कार्य का सम्पादन, पोष्यवर्ग का भरण-पोषण, आरम्भ किये हुए कर्म को सफल बनाना, अपराध के अनुसार उचित दण्ड देना, वैदिक यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करना, व्यवहार में न्याय की रक्षा करना और सत्यभाषण में अनुरक्त होना। ये सभी कर्म राजा के लिये धर्म ही हैं।

स्वयं को क्षत्रिय समझने वाले तथा वेदमतानुसार राजनेता, प्रशासनिक, न्यायिक व पुलिस अधिकारी आदि यदि धर्मात्मा हैं, तो उन्हें क्षत्रिय कहना योग्य है। ये सभी भगवान् शिव के वचनों पर ध्यान दें। वे विचारें कि-

- क्या वे अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने वाले हैं अर्थात् अपने काम, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष व लोभ पर नियन्त्रण रखने वाले हैं? अथवा भ्रष्टाचार व दुराचार में डूबे हैं?
- क्या वे वेदादि शास्त्रों के ज्ञान-विज्ञान को समझते हैं?

- क्या वे प्रतिदिन हवन करते हैं?
- क्या वे सुपात्रों को दान देते हैं?
- क्या वे ईश्वरोपासना, वृद्धों की सेवा, राष्ट्र के सभी नागरिकों का पालन, पशु-पक्षियों एवं अतिथि विद्वानों का भरण-पोषण करने वाले हैं?
- क्या वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के हित का पूर्ण ध्यान रखते हैं?
- क्या वे दृढ़ संकल्पी होकर राष्ट्र की रक्षा के कार्य में निष्काम भाव से संलग्न रहते हैं?
- क्या वे अपराधी को उचित दण्ड अवश्य देते व निरपराध की रक्षा करते हैं?
- क्या वे वैदिक कर्मों का सम्पादन करते हैं?
- क्या वे न्याययुक्त व्यवहार करते हैं अथवा जाति, मजहब, भाषा व क्षेत्र के नाम पर देश को बांटने में रत हैं?
- क्या वे मन, वचन व कर्म से सत्य का पालन करते हैं?

यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आपको क्षत्रिय अर्थात् देश का नेता, प्रशासनिक व सुरक्षा अधिकारी वा न्यायाधीश होने का कोई अधिकार नहीं है। आइये, आप सच्चे शिवभक्त बनने हेतु भगवान् शिव के इन उपदेशों पर आचरण करना प्रारम्भ करें।

4. वैश्य का धर्म

वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च॥ 54॥

वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मःसनातनः॥ 55॥

पशुओं का पालन, खेती, व्यापार, अग्निहोत्र में सदैव विशेष सक्रिय रहना, दान, अध्ययन, सन्मार्ग का आश्रय लेकर सदाचार में सदैव स्थित रहना, विद्वान् अतिथि सत्कार, मन व इन्द्रियों को सदैव वश में रखना, वेदज्ञ ब्राह्मणों का स्वागत और त्यागभावना से धन का उपभोग करना, ये सब वैश्यों के सनातन धर्म हैं॥ 54-55॥

सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथार्हतः॥ 56॥

त्रिवर्ग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं शूद्र, इन तीनों वर्णों का प्रत्येक वैश्य को सब प्रकार से यथाशक्ति यथायोग्य आतिथ्यसत्कार करना चाहिये ॥ 57॥

(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 141, गीताप्रेस)

वर्तमान में उद्योगपति, व्यापारी, कृषक, पशुपालक व मिस्त्री आदि कर्मों को करने वाले वैश्य वर्ग में माने जायेंगे, बशर्ते उनमें उपर्युक्त गुण भी हों। अब ऐसे सभी महानुभाव शिवभक्ति करने के साथ विचारें-

- क्या वे सदाचारपूर्वक अर्थात् ईमानदारी से व्यापार वा उद्योग करते हैं?
- क्या वे अपने कर्मचारियों को उचित व पर्याप्त वेतन आदि सुविधाओं से सन्तुष्ट रखते हैं?
- क्या वे कर्त्तव्यभावना से सुपात्रों को दान देते हैं?
- क्या वे अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखते वा रखने का प्रयत्न करते

हैं?

- क्या वे त्यागपूर्वक उपभोग करते हैं?
- क्या वे राष्ट्र रक्षा व पालन में संलग्न ब्राह्मण, क्षत्रिय व शूद्रों का पालन करते हैं? अर्थात् राष्ट्र को इनके लिए पर्याप्त व उचित कर ईमानदारी से देते हैं?

यदि नहीं, तो आपकी शिवभक्ति मात्र दिखावा है और धर्म के नाम पर दिखावा करने से पाप होता है।

5. शूद्र का धर्म

शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु॥ 57॥
स शूद्रः संशिततपाः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
शुश्रुषुरतिथि प्राप्तं तपः संचिनुते महत्॥ 58॥

शूद्र का परम धर्म है- तीनों वर्णों की सेवा करना। जो शूद्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय और घर पर आये हुए विद्वान् अतिथि की सेवा करने वाला है, वह महान् तप का सञ्चय कर लेता है। उसका सेवारूप धर्म उसके लिये कठोर तप है॥ 57-58॥

नित्यं स हि शुभाचारो देवताद्विजपूजकः।
शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः सम्प्रयुज्येत बुद्धिमान्॥ 59॥
(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 141, गीताप्रेस)

नित्य सदाचार का पालन और ईश्वरभक्त तथा वेदज्ञ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का सम्मान करने वाला बुद्धिमान् शूद्र, धर्म का मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है॥ 59॥

वेद व भगवान् मनु के मतानुसार श्रमिक को शूद्र कहा गया है। शूद्र का अर्थ अछूत व अधर्मी कभी नहीं रहा। वर्तमान विश्व में श्रमिक वही कर्म करता है, जिसका विधान यहाँ है। हाँ, शास्त्रों में शूद्र अर्थात् श्रमिक को अधिक सभ्य, शिक्षित व संस्कारी माना गया है। शिवभक्त श्रमिक विचार करें-

- क्या वे मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन करते हैं?
- क्या वे अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं?
- क्या वे अपना कार्य निष्ठापूर्वक करते हैं?
- क्या वे अपने स्वामी के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं?
- क्या वे ईश्वरभक्ति के साथ-2 यज्ञादि कर्मों व वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा रखते हैं?

यदि नहीं, तो वे शिवभक्त कहाने योग्य नहीं हैं।

6. वर्ण परिवर्तन

स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति॥ 8॥

यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मण-धर्म का पालन करते हुए ब्राह्मणत्व का सहारा लेता है, तो वह ब्रह्मभाव को प्राप्त अर्थात् ब्राह्मण हो जाता है॥ 8॥

यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते।
ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते॥ 9॥

जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्व का त्याग करके क्षत्रिय-धर्म का सेवन करता है, वह अपने धर्म से भ्रष्ट होकर क्षत्रिय योनि में जन्म लेता है अर्थात् वह क्षत्रिय हो जाता है॥ 9॥

वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा॥ 10॥

स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात्।
स्वधर्मात् प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते॥ 11॥

जो विप्र दुर्लभ ब्राह्मणत्व को पाकर लोभ और मोह के वशीभूत हो अपनी मन्दबुद्धिता के कारण वैश्य का कर्म करता है, वह वैश्य योनि में जन्म लेता है अर्थात् वह वैश्य ही हो जाता है। अथवा यदि वैश्य शूद्र के कर्म को अपनाता है, तो वह भी शूद्रत्व को प्राप्त होता है। शूद्रोचित कर्म करके अपने धर्म से भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है॥ 10-11॥

(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 143, गीताप्रेस)

यहाँ पाठक विचारें तो स्पष्ट होगा कि ब्राह्मणादि वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि कर्म व योग्यता से निर्धारित होते हैं। वर्तमान में तथाकथित जातियों में बंटे तथा वेदोक्त

वर्णव्यवस्था को बिना विचारे निन्दा करने वाले सोचें कि–

- क्या स्वयं को ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य मानने वाला अपने–2 कर्मों से भ्रष्ट होकर तथा शूद्र के कर्म करने पर स्वयं को शूद्र मानने हेतु उद्यत है?
- क्या वे अपने पूर्वजों के नाम पर गर्व करते–2 अपने वर्तमान स्तर व कर्मों की उपेक्षा करेंगें?
- क्या स्वयं को शूद्र मानने वाले नेता, शिक्षक, अधिकारी, कृषक, व्यापारी व पशुपालक होकर भी स्वयं को शूद्र न मान कर सरकारी आरक्षण आदि लाभों को छोड़ने के लिए उद्यत हैं?

यदि ऐसा नहीं, तो आप सभी शिवभक्त कहाने योग्य नहीं और न धार्मिक ही।

उल्लेखनीय है कि चारों ही वर्णों में सदाचार, जितेन्द्रियता, मन–वचन–कर्म से सत्य का पालन आदि गुण समान हैं। विद्या के स्तर के अनुसार कर्मों का विभाजन किया गया है, सभी परस्पर एक दूसरे का हित करने वाले हैं। जो माँसाहारी, अण्डाहारी, मछली खाने वाले, किसी भी प्रकार का नशा करने वाले, चोरी, तस्करी, हिंसा, असत्य आचरण करने वाले, लम्पट, कामी, क्रोधी, ईर्ष्यालु, रिश्वत लेने वाले, ठगी करने वाले, वस्तुओं में मिलावट करने वाले, राष्ट्र वा समाज में फूट डालने वाले व्यक्ति हैं, वे वैदिक मतानुसार अनार्य अर्थात् दस्यु कहाते हैं। इस कारण वे न तो ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र, बल्कि वे पापी व अनाचारी लोग हैं, चाहे वे कितने ही लौकिक वैभवसम्पन्न क्यों न हों, उनसे सच्चा शूद्र अर्थात् श्रमिक श्रेष्ठ है।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संस्कृतो वेदपारगः।
विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा॥ 45॥

इस प्रकार धर्मात्मा क्षत्रिय अपने कर्म से जन्मान्तर में ज्ञानविज्ञानसम्पन्न, संस्कारयुक्त तथा वेदों का पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण होता है॥ 45॥

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः॥ 46॥

देवि! इन कर्मफलों के प्रभाव से नीच जाति एवं हीन कुल में उत्पन्न हुआ शूद्र भी जन्मान्तर में शास्त्रज्ञान सम्पन्न और संस्कार युक्त ब्राह्मण होता है॥ 46॥

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च संततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्॥ 50॥

ब्राह्मणत्व की प्राप्ति में न तो केवल योनि, न संस्कार, न शास्त्रज्ञान और न संतति ही कारण है। ब्राह्मणत्व का प्रधान हेतु तो सदाचार ही है॥ 50॥

यहाँ सर्वथा स्पष्ट हो गया है कि वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि कर्म से ही निर्धारित होता है। वेद तथा वेद के पश्चात् इस पृथ्वी के सबसे प्रथम ग्रन्थ मनुस्मृति का भी यही उपदेश है। इस कारण एक ही व्यक्ति अपने वर्ण के कर्त्तव्यों से भ्रष्ट हो जाने पर, वह उस वर्ण से भ्रष्ट होकर, अन्य निम्न वर्ण को प्राप्त हो जाता है तथा एक व्यक्ति अन्य श्रेष्ठ वर्ण की योग्यता अर्जित कर ले, तो वह उस श्रेष्ठ वर्ण को निश्चित ही प्राप्त हो जाता है। दुर्भाग्य से आज कोई भी जन्म के स्थान पर कर्म से वर्ण-व्यवस्था अपनाना नहीं चाहता। सब अपने-अपने स्वार्थों में फंसे जन्मना जाति-व्यवस्था में ही रहना चाहते हैं, जो कि अनुचित है, अधर्म है। आयें, हम महादेव के इन वचनों का आदर करते हुए एक सुन्दर वर्ण-व्यवस्था के निर्माण का प्रयास करें, परन्तु इस कार्य में शासन का संरक्षण अनिवार्य है।

7. स्वर्ग (मोक्ष) का अधिकारी कौन ?

वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन ॥ 7 ॥

जो मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जिनकी आसक्ति सर्वथा दूर हो गयी है, वे पुरुष कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥ 7 ॥

ये न सज्जन्ति कस्मिंश्चित् ते न बद्ध्यन्ति कर्मभिः ।
प्राणातिपाताद् विरताः शीलवन्तो दयान्विताः ॥ 8 ॥
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ।

जो कहीं आसक्त नहीं होते, किसी के प्राणों की हत्या से दूर रहते हैं तथा जो सुशील और दयालु हैं, वे भी कर्मों के बन्धनों में नहीं पड़ते, जिनके लिए शत्रु और प्रिय मित्र दोनों समान हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥ 9 ॥

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ॥ 9 ॥
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।

जो सब प्राणियों पर दया करने वाले, सब जीवों के विश्वासपात्र तथा हिंसामय आचरणों को त्याग देने वाले हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥ 10 ॥

परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ॥ 10 ॥
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।

(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 144, गीताप्रेस)

जो दूसरों के धन पर ममता नहीं रखते, परायी स्त्री से सदा दूर रहते और धर्म के द्वारा प्राप्त किये अन्न का ही भोजन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं ॥ 11 ॥

आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात् तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 19॥

श्रीमहेश्वर ने कहा– जो हँसी और परिहास का सहारा लेकर भी अपने या दूसरे के लिए कभी असत्य नहीं बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं॥ 19॥

वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात् तथैव च।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 20॥

जो आजीविका अथवा धर्म के लिये तथा स्वेच्छाचार से भी कभी असत्यभाषण नहीं करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं॥ 20॥

पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम्।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 23॥

जो दो मित्रों में फूट डालने वाली चुगली की बातें नहीं करते हैं, सत्य और मैत्रीभाव से युक्त वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं॥ 23॥

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 24॥
(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व, अ. 144, गीताप्रेस)

जो मानव दूसरों से तीखी बातें बोलना और द्रोह करना छोड़ देते हैं, सब प्राणियों के प्रति समान भाव रखने वाले और जितेन्द्रिय होते हैं, वे स्वर्गलोक में जाते हैं॥ 24॥

ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम्।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 32॥

गाँव या घर के एकान्त स्थान में पड़े हुए पराये धन का जो कभी अभिनन्दन नहीं करते हैं अर्थात् उसको ग्रहण नहीं करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं॥ 32॥

तथैव परदारान् ये कामवृत्तान् रहोगतान्।
मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 33॥

इसी प्रकार जो मनुष्य एकान्त में प्राप्त हुई कामासक्त परायी स्त्रियों को मन से भी उनके साथ अन्याय करने का विचार नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं॥ 33॥

शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः।
भजन्ति मैत्राः संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 34॥

जो सबके प्रति मैत्रीभाव रखकर सबसे मिलते तथा शत्रु और मित्र को भी सदा समान हृदय से अपनाते हैं, वे मानव स्वर्गलोक में जाते हैं॥ 34॥

श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः।
स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ 35॥

जो वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता, दयालु, मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र, सत्य का आचरण करने वाले और अपने ही धन से संतुष्ट होते हैं, अर्थात् पराये धन का कभी लोभ नहीं करते, वे स्वर्गलोक में जाते हैं॥ 35॥

विनम्र निवेदन

मान्यवर! आपने आचार्य जी के कार्य और महत्ता को भली प्रकार समझ लिया होगा, ऐसी आशा करते हैं। यदि आपके हृदय और मस्तिष्क वेद के इस अपूर्व कार्य के लिए उत्सुक हुए हों और हमें अपना सहयोग करना चाहें, तो आप हमारे यज्ञ में निम्न प्रकार से सहयोगी बन सकते हैं-

1. प्रतिवर्ष न्यूनतम 12,000/- रूपये दान करके ट्रस्ट के **सहयोगी संरक्षक** बन सकते हैं अथवा एक बार न्यूनतम एक लाख रुपये का दान करके आजीवन **सहयोगी संरक्षक** बन सकते हैं। आपको न्यास की वार्षिक बैठक में तथा वार्षिकोत्सव के अवसर पर विशेष अतिथिरूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
2. प्रतिवर्ष न्यूनतम 6,000/- रूपये देकर **विशेष आमन्त्रित सदस्य** बन सकते हैं अथवा एक साथ न्यूनतम 50,000/- रूपये देकर **विशेष आमन्त्रित सदस्य** बन सकते हैं। आपको वार्षिक उत्सव व बैठक के अवसर पर अतिथिरूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
3. वार्षिक न्यूनतम 1,000/- रूपये देते रहकर **सहयोगी सदस्य** बन सकते हैं।

नोट- उपर्युक्त सभी सहयोगी महानुभावों को न्यास की सी.ए. द्वारा की हुई वार्षिक ऑडिट रिपोर्ट भेजी जाया करेगी। जो महानुभाव स्वयं दान नहीं कर सकें, वे दूसरों को प्रेरित करके कम से कम 8 सदस्य आदि बनाकर स्वयं नि:शुल्क उसी श्रेणी के सदस्य वा सहयोगी संरक्षक आदि बन सकते हैं।

4. वयोवृद्ध विद्वान्, संन्यासी, साधु, महान् वैज्ञानिक महानुभाव अपना आशीर्वाद तथा बौद्धिक सहयोग दे सकते हैं।
5. विद्यार्थी, किसान, श्रमिक, व्यापारी आदि अपनी पवित्र आहुति श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार सहयोग कर सकते हैं।

विशेष निवेदन

यह कार्य अत्यन्त पवित्र है, इस कारण आचार्य श्री की भावनानुसार विनम्र निवेदन है कि जिनकी आजीविका किसी भी प्रकार की हिंसा, चोरी, तस्करी, अश्लीलतावर्धक साधनों, नशीली वस्तुओं की बिक्री, धोखाधड़ी, शोषण आदि पर निर्भर हो तथा जो निर्धन भाई अपनी सामर्थ्य से अधिक (अथवा अपने परिवार में क्लेश करके) दान देना चाहते हों, ऐसे महानुभावों की सद्भावना का धन्यवाद करते हुए भी हम उनका दान लेने में असमर्थ हैं। कृपया ऐसा करने का प्रस्ताव करके हमें लज्जित न करें। हाँ, जो बन्धु ऐसे कर्मों को त्यागकर हमसे जुड़ना चाहें, तो उनका हार्दिक स्वागत है। संस्थान के संचालन हेतु कृपया इन दो खातों मे दान कर सकते हैं–

Bank Name	**Punjab National Bank**
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	4474000100005849
Branch	Bhinmal
IFS Code	PUNB0447400

या

Bank Name	**State Bank of India**
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	61001839825
Branch	Khari Road, Bhinmal
IFS Code	SBIN0031180

ज्ञातव्य है कि वैदिक विज्ञान के अग्रिम एवं उच्च स्तरीय विशाल शोध संस्थान हेतु 30 बीघा भूमि सिरोही (राजस्थान) नगर से राष्ट्रीय राजमार्ग – 62 से लगभग सवा कि.मी. दूर पालड़ी (एम) राजस्व ग्राम में क्रय कर ली गई है। इस संस्थान

के निर्माण का अनुमानित बजट 10 करोड़ रुपये है। जो महानुभाव इस महान् यज्ञ में अपनी पवित्र आहुति (बड़ी राशि) देना चाहते हैं, वे निम्नलिखित खाते में धन भेज सकते हैं-

Bank Name	**Axis Bank**
A/c Holder	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas
A/c Number	921010017739651
Branch	Bhinmal
IFS Code	UTIB0003757

आप अपना चैक/ड्राफ्ट/धनादेश, '**श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास**' PAN No. AAATV7229A के नाम (केवल खाते में देय) भेजने का कष्ट करें, साथ ही अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखकर अवश्य भेजने की कृपा करें। आप ऑनलाइन भी धन जमा करवा सकते हैं परन्तु ऐसा करने वाले महानुभाव अपना नाम व पता दूरभाष द्वारा तत्काल सूचित करने का कष्ट करें, जिससे समय पर रसीद भेजी जा सके, अन्यथा हमें बहुत कठिनाई होती है।

नोट- न्यास को दिया हुआ दान आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80-जी के अन्तर्गत कर मुक्त है।

“ मैं वैदिक विज्ञान के द्वारा एक अखण्ड, सुखी व समृद्ध भारत के निर्माण की आधारशिला रखने का प्रयास कर रहा हूँ, जिसमें प्रत्येक भारतीय तन, मन, विचारों व संस्कारों से विशुद्ध भारतीय होगा। उसके पास अपना विज्ञान वेदों, ऋषियों व देवों के प्राचीन विज्ञान पर आधारित एवं अपनी भाषा हिन्दी व संस्कृत में होगा। उसे अपने पूर्वजों की प्रतिभा, चरित्र एवं संस्कारों पर गर्व होगा, उसे पाश्चात्य विद्वानों की बौद्धिक दासता से मुक्ति मिलेगी, जिससे लार्ड मैकाले का वर्तमान में साकार हो चुका स्वप्न ध्वस्त हो सकेगा। यह प्यारा राष्ट्र पुन: विश्वगुरु बनकर विश्व को शान्ति एवं आनन्द का मार्ग दिखाएगा।

–आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

“ मैं वेद को वर्तमान विज्ञान के पीछे नहीं, बल्कि वर्तमान विज्ञान को वेद के पीछे चलाने की भावना रखता हूँ और मुझे विश्वास है कि मैं ऐसा कर पाऊँगा।

–आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

The Ved Science Publication

बोलो! किधर जाओगे ?
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

वेदविज्ञान-आलोकः
(ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

विज्ञान क्या है ?
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

परिचय
वैदिक भौतिकी
(वेदविज्ञान-आलोकः ग्रन्थ का सार)

सत्यार्थ प्रकाश
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

मांसाहार
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

What is Science?
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

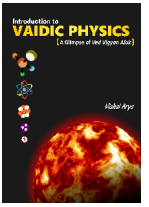

Introduction to
Vaidic Physics

We are dedicated to Publish, Promote and Sell texts that illuminate *Vaidika* science and Knowledge...

Contact us:

thevedscience.com thevedscience@gmail.com 9530363300

भगवान् शिव की दृष्टि में धर्म

“एक तो शिव सृष्टिकर्ता निराकार परब्रह्म परमात्मा का नाम है। दूसरे शिव एक दिव्य महापुरुष थे। वे अद्वितीय जितेन्द्रिय, महान् वैज्ञानिक, परम तेजस्वी, विलक्षण योद्धा, वीतराग एवं अनेक सिद्धियों से सम्पन्न परम योगी थे।

आचार्य अग्निव्रत

/vaidicphysics